बौद्ध - चर्या - पद्धति

लेखक
भदन्त बोधानन्द महास्थविर

बुद्धाब्द २४९१
विक्रमाब्द २००४
खृष्टाब्द १९४७

प्रथम बार
१०००

मूल्य
१॥)

प्रकाशक—
भदन्त बोधानन्द महास्थविर
बुद्ध-विहार, रिसालदार पार्क,
लखनऊ.

महाबोधि सभा सारनाथ के मंत्री
भिक्षु एम० संघरत्न जी ने इस पुस्तक के
प्रकाशन में धन व्यय किया है।

पुस्तक मिलने का पता:—
महाबोधि पुस्तक भंडार,
सारनाथ, बनारस।

मुद्रक—
पं० शिवशंकर भार्गव
फाईन प्रेस
हीवेट रोड, लखनऊ

समर्पण

अपने प्रान्त के वयोवृद्ध नेता,
युक्त प्रान्तीय असेम्बली के अध्यक्ष,
तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी साहित्य
की सर्वांगीण उन्नति के
सच्चे हितैषी
श्रीयुत पुरुषोत्तम दास जी टंडन
के कर कमलों में सादर
समर्पित।

प्रेमोपहार

सेवा में—

श्रीयुत

उपहार कर्ता—

ता०   सन १९   ई०

विषय-सूची

१.	प्रस्तावना ...	.... ७
२.	मंगलाचरण ...	.... १
३.	पूजा परिच्छेद . .	.... ३
४.	शील परिच्छेद	.. . ६
५.	वंदना परिच्छेद . .	.... १९
६.	भावना परिच्छेद .	.... ३०
७.	परित्राण परिच्छेद	.... ३७
८.	विवाहादि संस्कार परिच्छेद	.. ६५
९.	अभिवादन-शिष्टाचार परिच्छेद	.... ८३
१०.	पर्व-त्योहार परिच्छेद	.... ८६
११.	तीर्थ-स्मारकपरिच्छेद	... ९१
१२.	दान परिच्छेद	.... ९७
१३.	उपदेश परिच्छेद	.... १०४
१४.	तत्वज्ञान परिच्छेद	.... १३१
१५.	गूढ़ार्थ बोधिनी	....
१६.	शुद्धि पत्र .	....

प्रस्तावना

यह पुस्तक कुछ प्रेमी सज्जनों के अनुरोध से—विशेष रूप से साहु नन्हूँमल चौधरी के आग्रह से—कई वर्ष पहले लिखी जा चुकी थी परन्तु कागज के न मिलने, प्रेस और प्रकाशन संबंधी प्रतिबन्धों तथा धनाभाव इत्यादि कठिनाइयों के कारण पुस्तक प्रकाशित न हो सकी; जिसकी मुझे बहुत ही चिन्ता रही क्योंकि एक तो मैं वृद्ध हो गया हूँ, दूसरे कुछ वर्षों से स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। इससे म निराश-सा हो गया और सोचा कि यह पुस्तक मेरे जीवन मे शायद न छप सकेगी किन्तु महाबोधि सभा के परम उदार, बाल ब्रह्मचारी एवं कर्मवीर मंत्री भिक्षु एम्० संघरत्न जी ने इस पुस्तक के प्रकाशन व्यय की समस्त जिम्मेदारी लेकर मेरी चिन्ता और निराशा को दूर कर दिया। मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूँ। त्रिरत्नानुभाव से वे निरूज और दीर्घजीवी हों; जिससे उनके द्वारा पुण्यमय कार्य सम्पादित होते रहें, यही मेरी आन्तरिक कामना है।

इस पुस्तक की पांडुलिपि लिखने एवं उसे दोहराने में अपने परम प्रिय भिक्षु शान्ति जी शास्त्री और अपने शिष्य श्रामणेर प्रज्ञानन्द तथा पं० चंद्रिकाप्रसादजी जिज्ञासु एवं बाबू भूलन प्रसाद जी की सेवाओं के प्रति हम कृतज्ञ हैं। पं० लालबहादुर जी शास्त्री, वाई० सी० शंकरानन्द जी शास्त्री व बाबू छेदीलाल वर्मा की सहानुभूति के लिए हम कम कृतज्ञ नहीं हैं।

जिन लेखकों की पुस्तक-पुस्तिकाओं से इसके लिखने में मुझे सहायता मिली है, उनके प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

अन्त में भारतीय बौद्ध विद्वान् स्थविर आनन्द कौसल्यायनजी

एवं त्रिपिटकाचार्य स्थविर जगदीश काश्यप जी की सद्भावनाओं के लिए भी मैं कृतज्ञ हूँ।

सावधानी और सतर्कता रखने पर भी कुछ प्रूफ की भूलें रह गई हैं; जिनके लिए पुस्तक के अन्त में एक शुद्धि पत्र लगा दिया गया है। पाठक कृपया सुधार कर पढ़ें।

बुद्ध धर्म के उपासकों को चाहिए कि प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल शौचादि से छुट्टी पाकर किसी निकट के बौद्ध विहार (मन्दिर) या अपने घर में अथवा बाहर किसी उपयुक्त एकान्त स्थान में बैठकर अपने और जगत् के कल्याण के लिए इस पुस्तक में लिखे हुए पूजा-मन्त्रों को ध्यानपूर्वक पढ़ते हुए भगवान बुद्ध की पुष्प-धूप आदि से पूजन करें।

इसके बाद त्रिशरण सहित पंचशील मंत्रों का पाठ करना चाहिए, फिर त्रिरत्न वंदना और अष्टविंशति बुद्ध वंदना का पाठ करना चाहिए और अन्त में अपने तथा सबके हित के लिए ब्रह्म-विहार-भावना के मंत्रों का पाठ करना चाहिए। यह स्मरण रहे कि इन सब मंत्रों का पाठ करते समय इनके अर्थों का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए। यदि कोई बौद्ध भिक्षु (मुनि) मिलें तो यह सब पाठ उनके मुख से सुनना चाहिए। आचार्य के आवृत्ति करते समय सब मंत्र तो वैसे ही रहेंगे परन्तु पंचशील के पाठ में परिवर्तन हो जायगा अतएव आचार्य द्वारा पंचशील ग्रहण करने के प्रकार भी दे दिये गये हैं।

भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध सब देवताओं और मनुष्यों के परम पूजनीय हैं। उनकी पूजा और वंदना निर्वाण पथ में सहायक होती है। बुद्ध, धर्म और संघ ये तीनों त्रिरत्न कहलाते हैं। संसार के समस्त मूल्यवान् रत्नों में ये सर्वश्रेष्ठ हैं। इस-

लिये उनकी पूजा, वंदना करना सबका परम धर्म है। बुद्ध, धर्म और संघ की पूजा-वंदना के समय उनके पुनीत गुणों का स्मरण करने से वे सद्गुण अपने में विकसित होते हैं। बुद्ध के साक्षात्कार न होने पर बुद्ध चैत्य की वंदना करनी चाहिए।

बुद्ध चैत्य तीन प्रकार के हैं :—

(१) **धातु चैत्य**—भगवान् बुद्ध के मृतक-संस्कार के बाद उनकी अस्थियों का संचय करके उन पर जो समाधि-स्तूप बनवाये गये, उनको धातु चैत्य कहते हैं।

(२) **पारिभोगिक चैत्य**—भगवान् बुद्ध की व्यवहार की हुई वस्तुओं के ऊपर बने हुए समाधि-स्तूपों को पारिभोगिक चैत्य कहते हैं।

(३) **उद्देशिक चैत्य**—भगवान् बुद्ध की धातु, पाषाण, आदि से बनी हुई प्रतिमाओं या समाधि-स्तूप की प्रतिमाओं को उद्देशिक चैत्य कहते हैं।

धर्म-पूजा, बुद्ध-पूजा और संघ-पूजा के अन्तर्गत है तथा श्रद्धापूर्वक धर्म का पालन करना भी धर्म-पूजा करना है।

बौद्ध धर्म में शील, समाधि और प्रज्ञा के सम्यक् अनुशीलन से ही मनुष्य का परम कल्याण होता है तथा शील की शिक्षा से धर्म का क ख ग शुरू होता है। बौद्ध धर्म का अनुयायी जो भी हो, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह त्रिशरण ग्रहण करे अर्थात बुद्ध, धर्म और संघ में उसे पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास हो डगमग श्रद्धा वाले जो जरा-जरा-सी कठिनाइयों में त्रिशरण को भूलकर इधर-उधर भटकने लगते हैं, उनको लक्ष्य करके भगवान् ने कहा है—

बहुँ वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च,
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।
नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरण मुत्तमं,
नेतं सरणमागम्म सब्ब दुक्खा पमुच्चति।

धम्मपद १४।१०,११

बहुत से मनुष्य भय से घबराकर पर्वत, वन, बाग-बगीचे वृक्ष और चैत्य की शरण जाते हैं, पर यह शरण जाना कल्याण कर नहीं है। यह उत्तम शरण नहीं है। इनकी शरण जाने से सब दुःखों से छुटकारा नहीं होता।

बौद्ध धर्म के अनुयायी के लिए जहाँ यह आवश्यक है कि वह बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाय, वहाँ उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह अंधविश्वास से मुक्त हो, उसे अपने आप पर भी विश्वास हो। त्रिशरण से मनुष्य के अविकसित दिव्य गुणों को पूर्ण विकसित करने में सहायता मिलती है। बुद्ध शास्ता है, शिक्षक हैं। धर्म और संघ उन्हीं का प्रतिनिधित्व करते हैं। बुद्ध प्रलोभन-वाक्य कहकर किसी को अपनी शरण में नहीं बुलाते, जैसा कि गीता में लिखा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

गीता १८।६६

हे अर्जुन! सब धर्मों को त्याग करके एक मेरी ही शरण ले। मैं तुझे सब पापों से मुक्त करूँगा। शोक मत कर।

प्रत्युत भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में आनन्द को सम्बोधित करते हुए कहा है—

"आनन्द ! अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा"

—महापरिनिब्बान सुत्तं २ भाणवरं

हे आनन्द ! तुम अपना प्रदीप आप बनो अपनी शरण जाओ।

"तुम्हे हि किच्चं आतप्पं अक्खातारा तथागता"

धम्मपदं २०।४

काम तो तुम्हें ही करना है, तथागत तो सिर्फ राह बताने वाले हैं।

बुद्ध के कथन का सार निम्नोक्त गाथा से प्रकट है—

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।

स-चित्त परियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

धम्मपदं १४।५

किसी प्रकार के पापों का न करना पुण्यकर्मों का संपादन करना और अपने चित्त को परिशुद्ध रखना, यही बुद्धों का आदेश है।

हिन्दी भाषा-भाषी बौद्ध उपासकों (सद्गृहस्थों) के धार्मिक सामाजिक और पारिवारिक नित्य नैमित्तिक कृत्यों को बताने के लिये राष्ट्र-भाषा हिन्दी में कोई पुस्तक न थी यह बात हमें बहुत दिनों से खटक रही थी। इस अभाव को दूर करने के लिये यह "बौद्ध-चर्य्या-पद्धति" नामक पुस्तक लिखी गई। इसमें प्रस्तावना और मङ्गलाचरण के अतिरिक्त पूजा, शील, वंदना, भावना, परित्राण, विवाहादिक संस्कार, शिष्टाचार, पर्व और त्योहार, तीर्थ और स्मारक, दान, उपदेश और तत्वज्ञान नाम से बारह परिच्छेद तथा अन्त में पारिभाषिक शब्दों के अर्थ बताने के लिये गूढ़ार्थ बोधनी और शुद्धि-पत्र, एवं लेखक

का परिचयात्मक निवेदन भी दे दिया गया है। परिच्छेदों का परिचय इस प्रकार है:—

पूजा – से अभिप्राय है सत्कार या आदर। माता, पिता, आचार्य आदि पूज्य व्यक्ति हैं। बुद्ध और उनके श्रावक सब पूजनीयों में श्रेष्ठ हैं। यद्यपि सत्कार या आदर मानसिक भाव हैं पर उनका हमारी सभी कायिक और वाचिक क्रियाओं से संबन्ध है। पूजा के समय पुष्प आदि का अर्पण हमारे मन में विद्यमान सत्कार का द्योतक है। पूजनीय पात्रों के भेद से यह पूजा तीन प्रकार की होती है। यदि पूजनीय व्यक्ति अकेला है और हमारे समक्ष है, तो यह पूजा पुद्गल-पूजा या व्यक्ति विशेष की पूजा कहलाती है। यदि पूजनीय एक व्यक्ति न होकर संघ है तो वह संघ-पूजा कहलाती है। यदि पूजनीय विद्यमान नहीं है, वह अतीत हो चुका है, तो ऐसी पूजा उद्देश्य-पूजा कहलाती है। पूजनीयों में बुद्ध और उनके शिष्यों की पूजा का महाफल होता है। आज भगवान का भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है, पर भगवान के शिष्य हमारे बीच हैं और उनसे हमें धर्म का यथार्थ ज्ञान होता है, इसलिए वे हमारे लिए पूज्य हैं। कहा गया है:—

> पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
> पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे ॥
> ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
> न सक्का पुञ्ञं संखातुं इमेत्तमिति केनचि ॥
>
> धम्मपद १४।१७-१८

संसार के प्रपंच से जो छूट गए हैं, जो शोक भयादि उपद्रव को पार कर चुके हैं, उन पूजनीय बुद्ध और उनके शिष्यों तथा

वैसे ही मुक्त और निर्भय पुरुषों की पूजा से जो पुण्य होता है, उसके परिमाण को यह कहकर नहीं बतलाया जा सकता कि यह "इतना" है।

पूजनीयों का पूजा परम मंगलदायक होती है। भगवान् ने कहा है:—

"पूजा च पूजनीयानं एतं मंगलमुत्तमं" (मंगलसुत्त)

यह पूजा ही परम यज्ञ है जिसमें न तो आग जलानी पड़ती है, न बलिदान करना पड़ता है, न आज्य (घी) और हवि (साकल्य) को स्वाहा करना पड़ता है। इस पूजा यज्ञ का गुणानुवाद करते भगवान ने कहा है:—

मासे मासे सहस्सन यो यजेथ सतं समं।
एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं॥
धम्मपदं ८।७

महात्माओं की मुहूर्त भर की पूजा सौ वर्ष तक किए जाने वाले उस यज्ञ से श्रेष्ठ है जो प्रतिमास हजार हजार दक्षिणा देकर किया जाता है।

यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने।
एकं च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं॥
धम्मपदं ८।८

महात्माओं की मुहूर्त भर की हुई पूजा सौ वर्ष तक की गई अग्निचर्या तथा सौ वर्ष तक किए गये हवन से श्रेष्ठ होती है।

यज्ञ आदि के निमित्त भौतिक सामग्री जुटानी पड़ती है और उत्तमोत्तम पुष्टिकर खाद्य सामग्री अग्नि में जलाई जाती है,

जिसमें एक प्रकार से अनर्थ और हिंसा ही होती है। परन्तु पूजा-यज्ञ के लिए यदि मनमें श्रद्धा है, अध्यात्म-समर्पण का भाव है तो पर्याप्त है।

शील—बौद्ध त्रिशरण के अटल विश्वासी का शील ही मूलधन तथा शील ही मूल संबल है। शील का अर्थ सदाचार से है। बौद्ध सदाचार में आडबंर को बिल्कुल स्थान नहीं है। भगवान् ने कहा है:—

> **न नग्गचरिया न जटा न पंका,**
> **नाना सका थंडिल सायिका वा।**
> **रजोवजल्लं उक्कुटिकप्पधानं,**
> **सोधेन्ति मच्चं अवितिण्ण कङ्खं ॥**
> धम्मपदं १०।१३

जिसमें आकांक्षाएं बनी हुई हैं वह चाहे नंगा रहें, चाहे जटा बढ़ाए,चाहे कीचड़ लपेटे, चाहे उपवास करे, चाहे ज़मीन पर सोये, चाहे धूल लपेटे और चाहे उकंडू बैठे, पर उसकी शुद्धि नहीं होती।

असली शुद्धि तो शील पालन से ही होती है। विसुद्धिमग्ग में कहा है:—

> **न गंगा यमुना चापि सरभू वा सरस्वती।**
> **निन्नगा वाचिरवती मही चापि महानदी ॥**
> **सक्कुणन्ति विसोधेतुं तं मलं इध पाणिनं।**
> **विसोधयति सत्तानं यं वे सीलजलं मलं ॥**

प्राणियों के जिस मल को शील-रूपी जल धो डालता है, उसे गंगा, यमुना, सरभू, सरस्वती, अचिरवती, मही एवं महानदी नहीं धो पातीं।

जैसे साफ़ कपड़े पर रंग अच्छी तरह चढ़ता है, वैसे ही साफ़ मन में धर्म के ग्रहण करने की शक्ति खूब हुआ करती है। शीलाचरण से मनुष्य का मन इतना योग्य हो जाता है कि उस पर संसार की बुराइयों का असर नहीं होता। स्वयं उसमें चरित्रगत दुर्बलताएँ नहीं होतीं और इसी से उसमें एक प्रकार की निर्भयता और शान्ति आ जाती है, जो दम्भी और धर्मध्वजियों में नहीं होती। शील के महात्म्य को बताते हुए कहा हैः—

अत्तानुवादादि भयं विद्धंसयति सब्बसो।
जनेति कित्तिहासञ्च सीलं सील वतं सदा॥
गुणानं मूलभूतस्स दोसानं बलघातिनो।
इति सीलस्स विञ्ञेय्यं आनिसंसकथामुखं॥

विसुद्धिमग्ग

शीलवानों को अपने शील के कारण अपनी निन्दा-प्रशंसा का भय नहीं रह जाता। उन्हें यश और आनन्द मिलता है। शील गुणों का मूल है। शील से दोषों का बल क्षीण हो जाता है। यह शील का महात्म्य है।

शील के मुख्य लाभों का वर्णन इस प्रकार किया गया है। एक बार भगवान् ने पाटलिग्रामवासी उपासक उप सिकाओं को सम्बोधन करके शील के विषय में यों कहा, गृहपति गण! शील पालन के पांच महालाभ हैंः—

(१) पाप-विषय में लिप्त न हो, सदाचारी रह, अप्रमादी हो अपने कर्तव्य का पालन करने से अपार भोग-वस्तुओं की प्राप्ति होती है। यह शील-पालन का प्रथम लाभ है।

(२) फिर, शीलवान् का सुयश सर्वत्र फैलता है। यह दूसरा लाभ है।

(३) जिस सभा में भी जाते हैं उसमें शीलवान् पुरुष निर्भय रहते हैं, क्योंकि उन्हें किसी का भय नहीं। यह तीसरा लाभ है।

(४) मरते समय शीलवान् पुरुष का होश कायम रहता है। यह चौथा लाभ है।

(५) शीलवान् पुरुष देहत्याग करने पर स्वर्ग में जन्म ग्रहण करता है। यह पाँचवाँ लाभ है।

शील के भौतिक लाभ चाहे जो भी हों, पर उसका मुख्य लाभ आध्यात्मिक है। शीलवान के मनमें जो आत्म-स्थिरता या आत्म-शक्ति होती है, वह दुःशील को सुलभ नहीं। शील सम्पूर्ण मानसिक ताप को शान्त कर देता है। अशान्त पुरुष सदा यही सोचा करते हैं कि:—

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।"

धम्मपद १।३

उसने मुझे गाली दी, मुझे मारा, मुझे हराया, मुझे लूट लिया। इस तरह सोचते-सोचते लोग अपने हृदय में वैर-रूपी आग जलाते रहते हैं। वैर का मूल कारण दुःशीलता ही है। वैराग्नि का शमन शील से ही हो सकता है। कहा है—

न तं सजलदा वाता न चापि हरिचन्दनं।
नेव हारा न मणयो न चन्दकिरणंकुरा॥
समयन्तीध सत्तानं परिलाहं सुरक्खितं।
यं समेति इदं अरियं सीलं अच्चन्तसीतलं॥

विसुद्धिमग्ग

उत्तम शील अत्यन्त शीतल होता है। प्राणियों के जिस ताप को यह शान्त करता है, उसे तर हवा, हरिचन्दन, हार, मणि और चन्द्रमा की किरणे भी नहीं शान्त कर सकतीं।

मनुष्य मन, वचन और कर्म से जो कुछ करता है। वह सब सुशीलता और दुःशीलता से व्याप्त है। कायिक-वाचिक और मानसिक सभी कर्म यदि शील के साथ किये जाते हैं तो महाफल-दायक होते हैं। यदि दुःशीलता के साथ किये जाते हैं तो अनिष्टकर होते हैं। पूजा, वंदना, परित्राण पाठ, दान, पर्वोत्सव और तीर्थयात्रा आदि का शील से ही संबंध है। यदि शील है तो ये सब क्रियाएँ सार्थक हैं, वास्तविक हैं अन्यथा सब दिखावा मात्र है। उनका वास्तविक मूल्य नहीं के बराबर है। शील के विषय में भगवान् बुद्ध ने तो यहाँ तक कहा है किः—

सेय्यो अयोगुळो भुत्तो तत्तो अग्गि सिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो॥

धम्मपद २२।३

दुःशील और असंयमी होकर राष्ट्र का अन्न खाने से आग की लपट के समान तपे हुए लोहे के गोले को खा लेना अच्छा है।

वंदना—वंदना से अभिप्राय है श्रद्धा और नम्रता के साथ त्रिरत्न का गुण कीर्तन। गुण कीर्तनात्मक स्तुति से एक ओर जहाँ बुद्ध, धर्म और संघ रूपी रत्नों की विशेषताओं का बोध होता है वहां उन गुणों के निरंतर पाठ और बोध से हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है; जिससे हमारे मन में अविकसित सद्गुणों के विकास का अवसर मिलता है। वंदना से चित्त का झुकाव अच्छी बातों की ओर होता है। मन का अच्छी बातों की ओर झुकाव अर्थात् मन का सम्यक् प्रणिधान परम कल्याण कारी होता है। भगवान् ने कहा है कि—

न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसोनं ततो करे॥
धम्मपदं ३।११

सम्यक् प्रणिधान या अच्छी बातों में स्थित चित्त जो कल्याण करता है। उसे माता-पिता तथा दूसरे रिश्तेदार नहीं कर सकते।

भावना—धर्माचरण में शील के बाद भावना या ध्यान का स्थान है और भावना के बाद प्रज्ञा का। भावना और प्रज्ञा वस्तुतः अन्योन्याश्रित हैं—एक दूसरे के सहारे ठहरी हैं। भावना चित्त एकाग्र करने का नाम है। चित्त के एकाग्र होने पर प्रज्ञा स्फुरित होती है। पर एकाग्रता भी तब तक नहीं होती, जब तक मनुष्य प्रज्ञावान न हो। भगवान ने कहा है:—

नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च स वे निब्बाण सन्तिके॥
धम्मपदं २५।१३

जिसमे प्रज्ञा नहीं उसका चित्त एकाग्र (ध्यानस्थ) नहीं होता जिसका चित्त एकाग्र ध्यानस्थ) नहीं वह प्रज्ञावान नहीं हो सकता, जिसमें ध्यान और प्रज्ञा दोनों हैं वही निर्वाण के पास है।

प्रज्ञा का विकास या उस अवस्था तक पहुँचना जिसमें सभी आश्रव या मल नष्ट हो जायें सब का परम कर्तव्य है। अविकसित अवस्था में प्रज्ञा सभी के पास है, उसे शील और भावना द्वारा विकास करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। शील और भावना के द्वारा प्रज्ञा का विकास करते हुए जीना उत्तम जीवन है। भगवान ने कहा है कि:—

यो च वस्ससतं जीवे दुप्पञ्ञो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो पञ्ञावन्तस्स झायिनो॥
धम्मपद ८।१२

दुष्प्रज्ञ और असमाहित (=भावना रहित) होकर सौ वष के जीने से ध्यानी और प्रज्ञावान होकर एक दिन का जीना अधिक श्रेयस्कर है।

भावना और प्रज्ञा के मार्ग पर चलने की शील ही प्रथम सीढ़ी है। इतना ही नहीं, संसार में जीने के लिए शील ही एक मात्र समाज को सुसंस्कृत बनाने का साधन है। भावना और प्रज्ञा के बिना भी मानवीय जीवन सम्भव हो सकता है पर शील के बिना क्षण भर भी नहीं।

परित्राण— परित्राण का अर्थ है रक्षा। परित्राण उन मांगलिक और कल्याणकारी वचनों का पाठ है जिनके विषय में एक दीर्घ कालीन परंपरा से यह विश्वास किया जाता है कि उनके पाठ से विघ्न बाधाएँ दूर होती हैं। ये कल्याण कारी वचन बहुत ही मधुर शिक्षाओं से पूर्ण हैं। गृहस्थों के विवाहादि मांगलिक कार्यों के अवसर पर तथा श्राद्ध इत्यादि के समय एवं रोगादि बाधाओं की शांति के निमित्त बौद्ध आचार्य परित्राण देशना करते हैं।

इसके अतिरिक्त हिन्दुओं की सत्यनारायण कथा और मुसलमानों के मौलूद शरीफ की भांति बौद्ध उपासक भी बड़े सज धज के साथ परित्राण-देशना करवाते हैं। वेदी का-सा एक ऊँचा स्थान बनाकर उस पर फूल-पत्ते और पताकाओं से सजा कर एक मंडप तैयार करते हैं। मंडप के मध्य में कपड़े से ढका हुआ एक जल का कलश रख दिया जाता है। सामने भगवान् बुद्ध की मूर्ति या चित्र का फूल-मालादि से सजाये हुए एक ऊँचे

स्थान पर रखते हैं। चारों ओर धूप-गन्ध भी जला दी जाती है। नियत समय पर भिक्षुओं को बड़े सम्मान के साथ ले आते हैं। भिक्षु मंडप में जाकर कलश के चारों ओर गोलाकार में बैठ जाते हैं। तत्पश्चात् उपासक और उपासिकाएँ वेदी के नीचे यथास्थान बैठ जाती हैं।

तब प्रधान उपासक पान और सुपारी प्रधान भिक्षु को अर्पित कर और घुटने टेककर तीन बार प्रणाम करके परित्राण-देशना की याचना करता है। इसके बाद कलश के कनखे में तिबराया हुआ एक लम्बा धागा बांध दिया जाता है। धागा मंडप में चारों ओर भिक्षुओं के सामने से गुजरता है जिसे सभी भिक्षु अपने दाहिने हाथ से पकड़ लेते हैं। धागे को मंडप से निकाल कर उपासक उपासिकाओं के बीच भी चारों ओर घुमा दिया जाता है; जिसे सभी पकड़ लेते हैं। इस तरह मानों सभी एक सूत्र में सम्मिलित हो जाते हैं।

परित्राण देशना का पाठ आरंभ होता है। भिक्षु एक स्वर से कुछ सूत्र और गाथाओं का उच्चारण करते हैं जिनमें बुद्ध, धर्म, संघ, शील, समाधि, प्रज्ञा इत्यादि के गुण और गौरव कहे जाते हैं। रतन सूत्र, मगल सूत्र, और करणीय सूत्र इत्यादि इस समय के खास सूत्र होते हैं। जब पाठ समाप्त हो जाता है तब भिक्षु उपासकों को सूत्रों का तात्पर्य समझाते हुए आशीर्वाद और स्वस्तिकार देते हैं—इस सत्य वचन से तुम्हारी स्वस्ति हो, मंगल हो। (एतेन सच्च वज्जेन होतु ते जय मंगलं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु) मानों सूत्रों में कहे गये सत्य की दुहाई देकर आशीर्वाद दिया जाता है। फिर कलश का मुँह खोल दिया जाता है। उसके पानी को आशीर्वचन पढ़ पढ़कर पल्लव से भिक्षु सब लोगों पर छिड़कते हैं। कितने उसे पीकर माथा पर

थोप लेते हैं। धागे को समेट लिया जाता है। भिक्षु उसे उपासकों की दाहिनी कलाई पर रक्षा-बन्धन बाँधते हैं और यह मंत्र पढ़ते हैं:—

सब्बीतियो विवज्जन्तु, सब्बरोगो विनस्सतु।
माते भवतु अन्तरायो, सुखी दीघायुको भव॥

तुम्हारे सभी विघ्न छिन्न-भिन्न हो जायँ, सभी रोग नष्ट हो जायँ, तुम्हें किसी प्रकार की बाधा न हो, सुखी और दीर्घायु हो वो।

अन्त में कुछ मिष्ठान्न वितरण पूर्वक यह कार्य सम्पूर्ण होता है।

विवाहादि संस्कार—संस्कारों से मनुष्य-जीवन सुसंस्कृत होकर ऊँचा होता है। ऐसा सुसभ्य मानव-समाज का बहुत प्राचीन काल से विश्वास चला आता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश और जाति में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के कुछ न कुछ संस्कार प्रचलित हैं। अतएव बौद्ध समाज में भी १० संस्कार होते हैं:—

(१) गर्भ मंगल, (२) नाम करण, (३) अन्नाशन, (४) केस कप्पन, (५) कण्ण-विज्झन, (६) विद्यारंभ, (७) विवाह, (८) प्रव्रज्या, (९) उपसम्पदा और (१० मृतक सत्कार।

अभिवादन व शिष्टाचार—अभिवादन का अर्थ है नमस्कार। प्रत्येक देश के शिष्टाचार में अभिवादन का बड़ा महत्व है। अभिवादन के महत्त्व को बताते हुए भगवान् ने कहा है:—

यं किंचि यिट्ठं च हुतं च लोके,
संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति,
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो॥
धम्मपदं ८।९

सरल चित्त साधु पुरुषों को किया गया अभिवादन श्रेयस्कर होता है। पुण्य की इच्छा से किया गया यज्ञ-हवनादि उस अभिवादन के चौथे भाग की बराबरी नहीं कर सकता।

अभिवादनसीलस्स निच्चं वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं॥
धम्मपदं ८।१०

जो अभिवादन शील है, जो बड़ों की सेवा करता है, उसकी आयु, यश, सुख और बल ये चार बातें (= धर्म) बढ़ती हैं।

पर्व-त्योहार— पर्व शब्द का व्याकरणानुसार अर्थ है पोर या गांठ। पर सामान्यतया उस पवित्र काल से इसका अभिप्राय होता है; जिसमें कोई धार्मिक पर्वोत्सव मनाया जाता है। इन समारोहों के अवसर पर हम विशेष रूप से अपने शास्ता (= शिक्षक) का स्मरण सामाजिक रस्मों के द्वारा करते हैं। पर्वोत्सव धर्म का ही अंग है, क्योंकि त्रिशरण सहित शील ग्रहण और दानादि धार्मिक क्रियाओं के साथ उनका सम्पादन होता है। यह सब धार्मिक क्रियायें शील के ही अंगभूत हैं। शील ही उनमें प्रधान है।

तीर्थ-स्मारक तीर्थ का व्याकरणानुसार अर्थ घाट है। पर व्यवहार में उन पवित्र स्थानों को कहते हैं जिनका संबंध हमारे शास्ता के जीवन की किसी घटना से है अथवा जहाँ

पर उनसे और उनके शिष्यों से संबंध रखने वाले स्मृति-चिह्न हैं। तीर्थ यात्रा का मुख्य प्रयोजन उन-उन धार्मिक घटनाओं का आँखों देखा स्मरण है।

दान—दान का अर्थ है दूसरे के निमित्त अपने स्वत्व का परित्याग। दानों में धर्मदान सर्वश्रेष्ठ होता है। भगवान् ने कहा है—

"सब्बदानं धम्मदानं जिनाति"

धम्मपदं २४।२१

धर्मदान देने वाले दानियों में सर्वश्रेष्ठ होते हैं।

जो मनुष्य अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का दान करता है वह वस्तु उसे अवश्य मिलती है। भगवान् ने स्वयं इस विषय में कहा है:—

"मनापदायी लभते मनापं।
अग्गस्स दाता लभते पुनग्गं॥"

दान लेने वालों में वे लोग श्रेष्ठ होते हैं जो राग, द्वेष, मोह-रहित,संयमी एवं महान आत्मा हैं। यों तो जो भी दुःखी,असमर्थ, निर्बल और असहाय हैं उन्हें दान देना चाहिए और वे दान के उपयुक्त पात्र हैं, परन्तु समर्थों और सबलों में जो संसार के हित के लिए अकिञ्चन व्रतधारी हैं, असंग्रह का व्रत लिया है, जो अपने ज्ञानोपदेश से संसार के कल्याण में निरत हैं वे दान के उत्तम पात्र हैं। इस प्रकार के राग-द्वेषादि-रहित महात्माओं को दान देने का अपार फल होता है। भगवान् ने कहा है—

तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं॥

धम्मपदं २४।२३

खेतों का दोष तृण है, मनुष्यों का दोष राग है। इसलिये वीतराग मनुष्यों को दिया गया दान महाफल देता है।

तिण दोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं॥

धम्मपद २४।२४

खेतों का दोष तृण है, मनुष्यों का दोष राग है। इसलिए द्वेष-रहित मनुष्यों को दिया गया दान महाफल देता है।

तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं॥

धम्मपद २४।२५

खेतों का दोष तृण है, मनुष्यों का दोष मोह है। इसलिए मोह-रहित मनुष्यों को दिया गया दान महाफल देता है।

तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं॥

धम्मपद २४।२६

खेतों का दोष तृण है, और मनुष्यों का दोष इच्छा है। इसलिये इच्छा-रहित मनुष्यों को दिया गया दान महाफल देता है।

उपदेश

उपदेश परिच्छेद में धम्मपद से चुने हुए भगवान् बुद्ध के उपदेश हैं। खुद्दकनिकाय में धम्मपद १५ वां ग्रन्थ है, जो भगवान्न बुद्ध के धर्म शिक्षाओं का संग्रह है। इस धम्मपद ग्रन्थ में २६ वग्ग (अध्याय) तथा ४२३ गाथाएं (श्लोक) हैं। यह पवित्र धम्मपद ग्रन्थ केवल बौद्धों के लिये ही उपयोगी नहीं, वरन् भूमण्डल के समस्त लोगों के लिये परम उपयोगी तथा पठन-पाठन और मनन करने योग्य है। इस पक्षपात रहित सद् ग्रन्थ का पृथिवी की प्रायः सभी मुख्य-मुख्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। श्री० अल्बर्ट, जे० एडमन्ड (Prof Albert J Edmunds) अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं:—

"यदि एशिया-खण्ड में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई, तो वह यह है।........ .."

"If ever an immortal classic was produced on the continent of Asia it (Dhammapada) is this.. ...."

धम्मपद के सम्बन्ध में भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी ने अपने धम्मपद के अनुवाद की भूमिका में इस प्रकार लिखा है:—

"एक पुस्तक को और केवल एक पुस्तक को जीवन भर साथी बनाने की यदि कभी आपकी इच्छा हुई है तो विश्व के पुस्तकालय में आपको 'धम्मपद' से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है।"

"जिस प्रकार महाभारत में भगवद्गीता एक छोटी किन्तु अमूल्य कृति है, उसी प्रकार त्रिपिटक में 'धम्मपद' एक छोटा किन्तु मूल्यवान् रत्न है। काल की दृष्टि से भगवद्गीता की अपेक्षा धम्मपद प्राचीनतर है।

भगवद्गीता की विशेषता है, कई दार्शनिक विचारों के समन्वय का प्रयत्न ; इसीलिये गीता के टीकाकारों में आपस में मतभेद है ; लेकिन धम्मपद एक ही मार्ग है, एक ही शिक्षा है। उस पथ के पथिक का आदर्श निश्चित है।

यह बात शायद सार्थक है कि गीता की अपेक्षा प्राचीनतर होते हुए भी धम्मपद की केवल एक टीका—'धम्मपद-अट्ठकथा' उपलब्ध है, और भगवद्गीता की हैं जितने पण्डित उतनी भिन्न-भिन्न टीकाएँ।"

धम्मपद के विषय में भगवान बुद्ध ने स्वयं कहा है कि:—

यो च गाथा सतं भासे अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ ३ ॥
(धम्मपदं, सहस्सवग्ग)

यदि कोई अनर्थ-पदों से युक्त सैकड़ों गाथाएँ पढ़े। उनकी अपेक्षा धम्मपद की एक गाथा भी पढ़ना श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति लाभ होता है।

तत्वज्ञान – तत्वज्ञान में बौद्ध-तत्वज्ञान को अति संक्षेप में दिखाने की चेष्टा की गई है। बुद्ध का ज्ञान अनंत है। उन्होंने ८४ हज़ार धर्म स्कंधों का उपदेश दिया है। बुद्ध के उपदेशों का सबसे बड़ा संग्रह त्रिपिटक शास्त्र है। त्रिपिटिक शास्त्र तीन भागों में विभक्त है विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में भिक्षुओं के पालनीय नियमों का वर्णन है। सुत्त पिटक में भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न लोगों को दिया हुआ भगवान का उपदेश है। अभिधम्म पिटक बौद्ध दर्शन है।

(क) सुत्त पिटक पाँच निकायों में विभक्त है:—

(१) दीघ निकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय, (५) खुद्दक निकाय।

खुद्दक निकाय में १५ ग्रंथ हैं —

(१) खुद्दक पाठ, (२) धम्मपदं, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्त निपात, (६) विमान वत्थु, (७) पेत वत्थु, (८) थेर-गाथा, (९) थेरी-गाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदा मग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस, (१५) चरिया पिटक।

(ख) विनय पिटक पाँच भागों में विभक्त है:—

(१) महावग्ग, (२) चुल्लवग्ग, (३) पाराजिक, (४) पाचित्तिय, (५) परिवार।

(ग) अभिधम्म पिटक में निम्नलिखित सात ग्रंथ हैं:—

(१) धम्म संगनी, (२) विभंग, (३) धातु कथा, (४) पुग्गल पञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

त्रिपिटक के तत्वज्ञान का सार यह है:—

बुद्ध-धर्म माध्यमिक मार्ग (Middle Path) है, इसमें न तो व्रत, तपस्या आदि द्वारा शरीर को सुखाने का आदेश है और न विषय-भोगों में लिप्त रहने का ही।

बुद्ध-धर्म में शाश्वतवाद या उच्छेदवाद नहीं है। शाश्वतवाद का अर्थ है—किसी नित्य-कूटस्थ आत्मा का विश्वास करना। उच्छेदवाद का तात्पर्य है,शरीर के साथ आत्मा का भी विनाश मानना।

बुद्ध-धर्म में ५ स्कंध माने गये हैं, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान।

(१) पृथ्वी, अप, तेज और वायु इन चार भूतों तथा इनके कार्यों को रूप-स्कंध कहते हैं।

(२) सुख-दुःख आदि के अनुभवों को वेदना-स्कंध कहते हैं।

(३) हरा, पीला, लाल, छोटा-बड़ा इत्यादि पृथक-करणज्ञान को संज्ञा-स्कंध कहते हैं।

(४) पाप-पुण्य, बुरा-भला, स्वर्ग-नर्क आदि भावनाओं या धारणाओं को संस्कार-स्कंध कहते हैं।

(५) सम्पूर्ण विषयों को जानने और समझने को ही विज्ञान-स्कंध कहते हैं। इसी को चित्त या मन भी कहते हैं।

ये पाँचों स्कंध नाम और रूप दो भागों में विभक्त हैं। रूप स्कंध को छोड़कर शेष चारों स्कंध नाम-स्कंध के अन्तर्गत हैं। अब इन चारों नाम-स्कंधों में से विज्ञान-स्कंध सब में अग्रगामी और श्रेष्ठ है। वेदना, संज्ञा, संस्कार यह तीनों मन की वृत्तियाँ या अनुसांगिक-धर्म कहलाते हैं। मन का नाम चित्त और इन तीनों का नाम चेतसिक है। यह अखिल विश्व-ब्रह्मांड चित्त, चेतसिक और रूप का विस्तार तथा खेल है। निर्वाण इनसे परे है। चित्त, चेतसिक.रूप और निर्वाण यही बौद्ध-दर्शन के मूल चार तत्त्व हैं।

अति प्राचीन काल से जो यह धारणा चली आ रही है कि चेतन आत्मा ज्ञान स्वरूप होते हुए भी बिना जड़ मन के संयोग से बोध नहीं कर सकता है; परन्तु बौद्ध तत्व ज्ञान में मन जड़ नहीं और आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति मन और शरीर से संयुक्त है। इसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं। शरीर रूप कहलाता है और मन के चार आकार हैं—वेदना. संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इनमें वेदना, संज्ञा और संस्कार को चेतसिक कहते हैं और विज्ञान को मन या चित्त कहते हैं।

माता जिस प्रकार अपना जीवन देकर भी अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार सब प्राणियों के साथ अतुल प्रेम का बर्ताव करना चाहिए।

देवी-देवताओं का भरोसा छोड़कर अपना भरोसा करना चाहिए मनुष्य जो अविद्या और तृष्णा के कारण जन्म, मृत्यु,जरा, व्याधि आदि दुःख-चक्र में पड़ा है, उससे छुटकारा पाने के लिये उसे शील, समाधि और प्रज्ञा का सम्यक् अनुशीलन करना चाहिये।

देवता, पितरों को सन्तुष्ट व प्रसन्न करने के लिये "स्वाहा, स्वधा" के द्वारा हो या और किसी पद्धति के द्वारा पशु-पक्षी और नर-बलि आदि करना तथा मद्य, भाँग, चरस, इत्यादि नशे की चीजों को अर्पण करना धर्म विरुद्ध है।

प्रगतिशील मानव जाति के किसी भी भाग को अधिकार-वंचित एवं उनके उन्नति-विकाश के मार्ग को अवरुद्ध, और मानवीय उच्चाकांक्षाओं को पद-दलित करके उनके श्रम से वंशानुगत अनुचित लाभ उठाना और फिर यह भी कहना कि हमारा यह व्यवहार न्यायोचित है, क्योंकि ये लोग विधाता के चरण से उत्पन्न हुए हैं और पूर्व जन्म के पाप के कारण शूद्र या अछूतों के घर जन्में हैं। इस प्रकार जन्मना-चातुर्वर्णी व्यवस्था हो या अन्य कोई व्यवस्था, न्याय विरुद्ध और स्वार्थ पूर्ण है। मनुष्य की श्रेष्ठता वा बड़ाई उसके विद्या और आचरण से हैं, न कि किसी जाति या कुल विशेष में जन्म लेने से।

त्रिपिटक के मनन पूर्वक अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि :—

(१) बुद्ध दार्शनिक विषय में न उच्छेदवादी और न शाश्वतवादी वल्कि सन्ततिवादी थे।

(२) क—वे धार्मिक विषय में कोई ईश्वरीय पुस्तक नहीं मानते थे बल्कि वे अपना प्रमाण स्वयं आप थे अर्थात् वे स्वतः प्रमाण थे। हाँ, वे यह बात जरूर मानते थे कि मेरे पहले भी मेरे जैसे बुद्ध हो चुके हैं, उन्होंने जो सत्य, अहिंसा और न्याय का मार्ग दिखलाया था, उसको जनता भूल गई, और मिथ्या दृष्टियों में फंस गई। अब मैं उन्हीं पूर्व बुद्धों की सचाई को फिर से दिखलाता हूँ।

ख—बुद्ध भोग या मोक्ष की प्राप्ति लिए किसी देवी-देवता ईश्वर-परमेश्वर की उपासना-आराधना का उपदेश नहीं करते

थे। वे मनुष्य को पारस्परिक सहायता-सहानुभूति, और पवित्र जीवन यापन करने का उपदेश करते थे।

ग—बुद्ध का मार्ग—'कामसुखल्लिकानुयोग', 'अत्तखिल मतानुयोग' अर्थात् विषय-भोगों में डूब जाना या शरीर को सुखवाना—इन दोनों के बीज का मार्ग—माध्यमिक मार्ग—अर्थात् संयम का मार्ग सिखलाता है।

३—सामाजिक विषय में बुद्ध जन्म से वर्ण या जाति नहीं मानते थे। वे अपने शिष्यों—श्रमण धम—में क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र और अति शूद्र सबको ले लेते थे। यही प्राचीन भारतीय आचार्यों से बुद्ध की विशेषता थी।

अब हम आचार्य नगार्जुन के शब्दों में इस प्रस्तावना का उपसंहार करते हैं:—

> अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम् ।
> अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम् ॥
> यः प्रतीत्यसमुत्पादं प्रपञ्चोपशमं शिवम् ।
> देशयामास सम्बुध्दस्तं वन्दे वदतां वरम् ॥
>
> —माध्यमिक कारिका

जिन सम्बुद्धने न निरुद्ध होने वाले, न उत्पन्न होने वाले, न उच्छिन्न होने वाले, न शाश्वत, न एकार्थ, न अनेकार्थ, न आने वाले, न निकलने वाले प्रपञ्च के उपशम (=शान्ति) स्वरूप और शिव रूप, प्रतीत्य समुत्पाद का उपदेश दिया उन प्रवचन करने वालों में श्रेष्ठ सम्यक् सम्बुद्ध को प्रणाम करता हूँ।

बुद्धाब्द २४९१ }
खृष्टाब्द १९४७ }   बोधानन्द महास्थविर

बुद्ध सरण

बौद्ध—चर्य्या—पद्धति

❀ मंगलाचरण ❀

ब्रह्मिन्द-देविन्द-नरिन्द राजं, बोधि सुबोधि करुणा गुणग्गं ;
पञ्ञापदीपज्जलितं जलन्तं, वंदामि बुद्धं भव पार तिण्णं ॥

जो ब्रह्माधिपति, देवाधिपति, नरेन्द्राधिपति हैं और जगत में उत्तम बोधि (ज्ञान) लाभ करने तथा करुणागुण मे सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसे प्रज्ञा आलोक से आलोकित भव सागर से पार भगवान बुद्ध की मैं वंदना करता हूँ। १॥

जगदुपकृतिरेव बुद्धपूजा
तदपकृतिस्तव लोकनाथ पीडा ।
जिन जगदपकृत् कथं न लज्जे
गदितुमहं तव पादयत्र भक्तः ॥२॥

हे बुद्ध ! जगत् का उपकार करना ही तो आपकी पूजा करना है और हे लोकनाथ ! जगत् का अपकार करना ही आपको पीड़ा देना है। हे जिन ! मैं जगत्का अपकारक हूँ। तब मुझे अपनेआप को आपके चरण-कमलों का भक्त कहने मे क्यों लज्जा न आये।

मातेवासीत् परस्त्री भवति परधने न स्पृहा यस्य पुंसो
मिथ्यावादी न यःस्यान्नपिबति मदिरां प्राणिनो यो न हन्यात्
मर्यादाभंगभीरुः सकरुणहृदय स्त्यक्तसर्वाभिमानो
धर्मात्मा ते स एव प्रभवति भगवन् पादपूजां विधातुम् ॥३॥

हे भगवन् ! आपके चरणों की पूजा वही धर्मात्मा कर सकता है, जिस पुरुष की पराये धन में स्पृहा नहीं है, जो

मिथ्यावादी नहीं है, जो मदिरा नहीं पीता है, जो प्राणिहत्या नहीं करता है, जिसे मर्यादा भंग करते डर लगता है, जो दयावान् है तथा जिसने सारा अभिमान त्याग दिया है।

चेतावनी

कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ॥ ४॥
उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च॥ ५॥

राग-द्वेष की अग्नि में जलते रहने पर भी तुम्हें हँसी और आनन्द कैसा ? अज्ञान-रूपी अन्धकार में घिरे रहने पर भी तुम ज्ञान-प्रदीप को क्यों नहीं खोजते हो ?

उठो, आलसी न बनो, कायिक, वाचिक और मानसिक (संयमरूपी) सुचरित धर्म का पालन करो। क्योंकि धर्म का आचरण करने वाले इस लोक और परलोक में सुख से रहते हैं।

सचे भायथ दुक्खस्स सचे वो दुक्खं मप्पियं।
उपेहि सरणं बुद्धं धम्मं संघ च तादिनं॥ ६॥
यो च बुद्धं च धम्मं च संघं च सरणंगतो।
रक्खन्ति तं सदा देवा दुग्गतिं सो न गच्छति॥ ७॥

यदि तुम दुःख से डरते हो और दुःख तुमको अप्रिय है तो तुम बुद्ध की शरण में जाओ, धर्म की शरण में जाओ और संघ की शरण में जाओ।

जो लोग बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाते हैं उनकी देवता लोग सदैव रक्षा करते हैं और वे दुर्गति को प्राप्त नहीं होते

पूजा परिच्छेद

बुद्ध-पूजा और अनित्य भावना

(१) निरोध-समापत्तितो उट्ठहित्वा विय निसिन्नस्स भगवतो अरहतो सम्मासमबुद्धस्स इमेना पुप्फेन पूजेमि ।

(२) इदं पुपफ पूजं बुद्ध-पच्चेक-बुद्ध अग्गसावक-महासावक अरहंतानं सभावसीलं, अहंपि तेसं अनुवत्तको होमि ।

(३) इदं पुपफंदानि वण्णेनपि सुवण्णं गंधेनपि सुगंधं संठाने नपि सुसंठानं, खिप्पमेव दुवण्णं दुगंधं दुसंठानं भविस्सति ।

(४) एवमेव सब्बे संखारा अनिच्चा, सब्बे संखारा दुक्खा, सब्बेधम्मा अनत्ताति ।

(५) इमेन वंदन-मानन-पूजा पटित्यानुभावेन आसवक्खयो होतु, सब्बे दुक्खा विनस्सन्तु ।

(१-२) निरोध नामक समाधि से उठकर विराजमान भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध की हम इस पुष्प के द्वारा पूजा करते हैं । इसी प्रकार बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, अग्र श्रावक, महाश्रावक

और अर्हन् लोग भी अपने पहले जीवन में अपने से पूर्व बुद्धों की पुष्प आदि से पूजा किया करते थे। हम भी उन्हीं लोगों का अनुसरण करते हैं।

(३) यह फूल अभी देखने में अत्यन्त सुन्दर है, बहुत सुगंधित है और बहुत सुहावनी बनावट का है। किन्तु बहुत जल्दी यह कुरूप और दुर्गन्ध युक्त हो जायगा। इसकी बनावट बिगड़ जायगी। यह नष्ट हो जायगा।

(४) इसी प्रकार समस्त उत्पन्न होने वाले पदार्थ नाशवान् और दुःख पूर्ण हैं तथा सब अनुत्पन्न सत्ता अनात्म है।

(५) इस स्तुति, वंदना और पूजा के प्रभाव से हम लोगों के काम क्रोधादि पाप और सब दुःख दूर हों।

त्रिरत्न-पूजा

यो सो भगवा अरहं सम्मा सम्बुद्धो, स्वाक्खातो येन भगवतो धम्मो, सुपटिपन्नो यस्य भगवतो सावक-संघो, तमहं भगवंतं सधम्मं ससंघं इमेहि पुप्फेहि पूजेमि।

इमाय बुद्ध पूजाय, कताय सुद्ध चेतसा।
चिरं तिट्ठतु सद्धम्मो, लोको होतु सुखी सदा॥

जो वह भगवान अर्हन् सम्यक् सम्बुद्ध हैं, जिनका धर्म सुन्दर रूप से कहा गया है और जिनके शिष्य लोग अच्छे पथ पर चलते हैं - मैं उन भगवान् बुद्ध की, उनके धर्म और संघ के सहित इन पुष्पों से पूजा करता हूँ।

शुद्ध चित्त से की गई इस बुद्ध-पूजा के द्वारा सद्धर्म चिरकाल तक स्थायी रहे और सब लोग सदा सुखी रहें।

[उपरोक्त दोनों मंत्रों में जो 'पुष्प' शब्द आया है, उसकी जगह धूप, दीप, फल इत्यादि जो कुछ भी अर्पण करना हो, उसका नाम लेकर दोनों मंत्रों में से किसी एक मंत्र का उच्चारण करते हुए पूजा करनी चाहिये।]

शील परिच्छेद

त्रिरत्न-सहित पंचशील

बुद्ध को प्रणाम

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स ।

उन यथार्थ ज्ञानी पूज्य भगवान् को नमस्कार ।

त्रिशरण

बुद्धं सरणं गच्छामि ।
धम्मं सरणं गच्छामि ।
संघं सरणं गच्छामि ।

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ ।

दुतियम्पि, बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि, धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि, संघं सरणं गच्छामि ।

दूसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ ।
दूसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ ।
दूसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ ।

तवियम्पि, बुद्धं सरणं गच्छामि।
ततियम्पि, धम्मं सरणं गच्छामि।
ततियम्पि, संघं सरणं गच्छामि।
तीसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ।

पंचशील

१—पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
२—अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
३—कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि
४—मुसावादा वेमरणी सिक्खापदं समादियामि।
५—सुरामेरयमज्ज पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

१—मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
२—मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
३—मैं पर स्त्री गमनादि, नीति विरुद्ध कामाचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
४—मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
५—मैं सुरा-मेरय आदि मादक द्रव्यों के सेवन तथा प्रमाद के स्थान जुए आदि के खेल से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

आचार्य द्वारा पंचशील ग्रहण करने की विधि

शिष्य—ओकास, अहं भन्ते ! तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि । अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ में भन्ते !

दुतियम्पि अहं भन्ते ! तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि । अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ में भन्ते ।

ततियम्पि अहं भन्ते ! तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि । अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ में भन्ते ।

गुरु—यमहं वदामि तं वदेहि (बहुवचन होने से 'वदेथ' कहना चाहिए)

शिष्य—आम भन्ते ।

(नमस्कार मंत्र)

गुरु शिष्य साथ-साथ —

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स (तीन बार)

(सरणागमन मंत्र)

बुद्धं सरणं गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि,
संघं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि,
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि,

दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि।
ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि,
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि,
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि।

गुरु—तिसरण-गमनं सम्पूण्णं।

शिष्य—आम भन्ते।

(पंचशील मन्त्र)

गुरु-शिष्य साथ साथ—

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
३. कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
४. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।
५. सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

गुरु—तिसरणेन सद्धिं पञ्चसील धम्मं साधुकं सुरक्खितं कत्वा अप्पमादेन सम्पादेतब्बं।

शिष्य—आम भन्ते।

सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता

आचार्य द्वारा पञ्चशील ग्रहण करने की विधि का भाषानुवाद

शिष्य—अवकाश दीजिए हे भन्ते ! मैं त्रिशरण-सहित, पंचशील धर्म की याचना करता हूँ। भन्ते, अनुग्रह करके मुझे शील प्रदान कीजिए।

द्वितीय बार .... तृतीयबार .... याचना करता हूँ। अनुग्रह करके हमें शील प्रदान कीजिए।

गुरु—मैं जो कहता हूँ, तुम वही कहो। (बहु बचन होने से 'तुम' की जगह 'तुम लोग' कहना चाहिए।)

शिष्य—अच्छा भन्ते।

(प्रणाम मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

उन भगवान् अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध को प्रणाम।

(त्रिशरण मंत्र)

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ।

दूसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
दूसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
दूसरी बार भी, मैं संघ की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी, मै संघ की शरण जाता हूँ।

गुरु—त्रिशरण समाप्त हुआ।

शिष्य—अच्छा भन्ते।

(पंचशील मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

१—मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

२—मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
३—मैं पर स्त्री गमनादि नीति विरुद्ध कामाचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
४—मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
५—मैं सुरा-मेरय- मद्यादि नशे का सेवन तथा प्रमाद के स्थान (जुए आदि के खेल) से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

गुरु—त्रिशरण के सहित पंचशील धर्म को अच्छी तरह से सुरक्षित रक्खो और अप्रमत्त भाव से पालन करो।

शिष्य—अच्छा भन्ते।

सारे प्राणी सुखी हों।

अष्ट उपोसथ शील

(प्रार्थना मंत्र)

शिष्य—ओकास अहं भन्ते! तिसरणेन सह अट्ठङ्ग-समन्ना गतं उपोसथ सीलं धम्मं याचामि, अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते!

दुतियम्पि अहं भन्ते तिसरणेन सह अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथ सीलं धम्मं याचामि, अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

ततियम्पि अहं भन्ते तिसरणेन सह अट्ठङ्गसमन्ना-गतं उपोसथ सीलं धम्मं याचामि, अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

गुरु—यमहं वदामि तं वदेहि।

(बहुवचन होने से 'बदेथ' कहना चाहिए)

शिष्य—आम भन्ते ।

(नमस्कार मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

नमो तस्स भगवतो अरहत सम्मासम्बुद्धस्स (तीन बार)

(सरणागमन मंत्र)

बुद्धं सरणं गच्छामि ,
धम्मं सरणं गच्छामि ,
संघं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ,
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ,
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ,
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ,
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि ।

गुरु—तिसरण - गमनं सम्पूण्णं ।

शिष्य—आम भन्ते ।

(अष्टशील मंत्र)

गुरु-शिष्य साथ-साथ—

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खपदं समादियामि ।
३. अब्रह्मचरिया वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
४. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
५. सुरमेरय मज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
६. विकाल भोजना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
७. नच्च-गीत-वादित-विसूक-दस्सन-माला, गंध-विलेपन-धारण मंडेन-विभूसनट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
८. उच्चासयन-महासयना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

गुरु— तसरणेन सद्धिं अट्ठङ्गसमन्नागतं उपोसथ सीलं धम्मं साधुकं सुरक्खितं कत्वा अप्पमादेन सम्पादेहि (बहुवचन होने से सम्पादेथ' कहना चाहिए)

शिष्य... आम भन्ते ।
सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ।

अष्ट उपोसथ शील का भाषानुवाद

(अष्टशील प्रार्थना मंत्र)

शिष्य—अवकाश दीजिए, हे भन्ते, मैं त्रिशरण सहित आठ

अगों से युक्त उपोसथ शील की याचना करता हूँ। भन्ते अनुग्रह करके मुझे शील प्रदान कीजिए, द्वितीय बार । तृतीय बार याचना करता हूँ। अनुग्रह करके मुझे शील प्रदान कीजिए।

गुरु—जो मैं कहता हूँ, तुम वही कहो।

(बहु वचन होने से 'तुम लोग कहना चाहिए।)

शिष्य—अच्छा भन्ते।

(प्रणाम मत्र)

गुरु शिष्य साथ साथ

हम उन भगवान अर्हत सम्यक सम्बुद्ध को प्रणाम करते हैं।

मै बुद्ध की शरण जाता हूँ।
मै धर्म की शरण जाता हूँ।
मै सघ की शरण जाता हूँ।

मैं द्वितीय ओर तृतीय बार भी त्रिशरण मे जाता हूँ।

गुरु—त्रिशरण समाप्त हुआ।

शिष्य—अच्छा भन्ते।

[अष्टशील मंत्र]

गुरु शिष्य साथ साथ—

१ मैं प्राणी हिंसा से विरत रहने का शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
२ मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
३ मै अब्रह्मचर्य से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हू।
४ मैं मिथ्या वचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
५ मै सुरा मेरय आदि मादक द्रव्यों के सेवन तथा प्रमाद के स्थान जुए आदि के खेल से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

६. मैं विकाल भोजन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ। (बारह बजे दिन के बाद दूसरे दिन सूर्योदय तक बौद्ध भिक्षु लोग भोजन नहीं करते। इसी को विकाल भोजन कहते हैं)

७. मैं नाच, गाना, बजाना और मेले-तमाशे को देखने तथा माला और सुगंधित लेपनादिकों को धारण करने एवं शरीर शृंगार के लिए किसी प्रकार के आभूषण की वस्तुओं से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

८. मैं बहुत ऊंची, गुलगुली और विलासिता को बढ़ाने वाली राजसी शय्याओं पर सोने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

गुरु—त्रिशरण सहित अष्ट शील धर्म को अच्छी तरह से सुरक्षित रक्खो और अप्रमत्त भाव से पालन करो।

शिष्य—जैसी आज्ञा।

सारे प्राणी सुखी हों।

एकादश सुचरित शील

अपने आप ग्रहण करने की विधि

(नमस्कार मंत्र)

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। (तीन बार)

[त्रिशरणागमन-मंत्र]

बुद्धं सरणं गच्छामि।

धम्मं सरणं गच्छामि ।
संघं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि ।

(एकादश सुचरित शील-मंत्र)

कायिक सुचरितः—

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
३ कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि
४ सुरा, मेरय, मज्ज, पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

वाचिक सुचरित—

५. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
६. पिसुनाय वाचाय वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
७ फरुसाय वाचाय वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।
८. सम्फप्पलापा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।

मानसिक सुचरितः—

९. अभिज्झाय वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

१०. व्यापादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

११ मिच्छादिट्ठया वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

इमानि एकादस सुचरित-सिक्खापदं समादियामि।

(भाषानुवाद)

(प्रणाम-मंत्र)

मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को प्रणाम करता हूँ।
(तीन बार)

(त्रिशरण मंत्र)

मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ।
मैं द्वितीय बार तथा तृतीय बार भी त्रिशरण जाता हूँ।

एकादश सुचरित शील मंत्र

कायिक सुचरित—

(१) मैं प्राणी हत्या से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(२) मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(३) मैं पर स्त्री गमनादि, नीति विरुद्ध कामाचार से वि[illegible] रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(४) मैं शराब, ताड़ी, गांजा, भाँग इत्यादि नशों से तथा

प्रमाद के स्थान जुए आदि के खेल से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

वाचिक सुचरित—

(५) मैं मिथ्यावचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ

(६) मैं चुगली से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(७) मैं कटु वचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(८) मैं व्यर्थ वचन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

मानसिक सुचरित—

(९) मैं लोभ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(१०) मैं क्रोध से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

(११) मैं उच्छेद वाद और शाश्वत वाद आदि मिथ्या-दृष्टियों से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

इन एकादस सुचरित शिक्षाओं को ग्रहण करता हूँ।

इसी प्रकार से दस शील, अष्टशील और पंचशील आचार्य के द्वारा या अपने आप ग्रहण किये जा सकते हैं। भिक्षुओं के २२७ शीलों का यहां उल्लेख नहीं किया गया है। इसके लिये भिक्षु प्रातिमोक्ष नामक ग्रंथ पढ़ना चाहिये।

वन्दना परिच्छेद

त्रिरत्न-वंदना

१. बुद्ध-वंदना

इतिपि सो भगवा अरहं सम्मा सम्बुद्धो विज्जाचरण सम्पन्नो सुगतो लोक विदू अनुत्तरो पुरिसदम्म सारथी सत्थादेव मनुस्सानां बुद्धो भगवाति। बुद्धं जीवित परियन्तं सरणं गच्छामि ॥ १ ॥

पूर्व बुद्धों की तरह यह भगवान् भी सबके पूज्य, पूर्ण सर्वज्ञ सब सद् विद्याओं और सदाचरणों से युक्त सुन्दर गति वाले, लोक लोकांतर के रहस्य को जानने वाले सर्वश्रेष्ठ महापुरुष हैं और जैसे बिगड़े हुये घोड़े को सारथी ठीक रास्ते पर लाता है वैसे ही राग, द्वेष और मोह में फँसे हुये मनुष्यों को ठीक मार्ग पर लाने वाले, देवता और मनुष्यों के शिक्षक स्वयं बोधस्वरूप और दूसरों को बोध कराने वाले तथा सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यों से युक्त और सम्पूर्ण क्लेशों से युक्त हैं। मैं अपने जीवन पर्यन्त बुद्ध की शरण जाता हूँ॥ १॥

ये च बुद्धा अतीता च, ये च बुद्धा अनागता।
पच्चुप्पन्ना च ये बुद्धा, अहं वंदामि सब्बदा ॥ २ ॥

भूतकाल में जितने भी बुद्ध हुए हैं और भविष्यत् काल में जितने भी बुद्ध होंगे, तथा इस वर्तमान काल के भी जितने बुद्ध हैं—उन सबको हम सदा वंदना करते हैं ॥ २ ॥

नत्थि मे सरणं अञ्ञं, बुद्धो मे सरणं वरं ।
एतेन सच्चवज्जेन, होतु मे जय मंगलं ॥ ३ ॥

हमारा कोई दूसरा शरण (आश्रय) नहीं है, केवल बुद्ध ही हमारे सर्वोत्तम शरण हैं। इस सत्य वाक्य के द्वारा हमारी जय और मंगल हो ॥ ३ ॥

उत्तमङ्गेन वंदेहं, पादपंसु वरुत्तमं ।
बुद्धे यो खलितो दोसो, बुद्धो खमतु तं ममं ॥४॥

जो सम्पूर्ण दोष और मल से रहित भगवान् बुद्ध हैं, मैं उनकी पवित्र पद-धूलि की नत मस्तक होकर वंदना करता हूं। यदि अज्ञानतावश मुझसे कोई पाप हुआ हो तो बुद्ध उसको क्षमा करें ॥ ४ ॥

यं किंचि रतनं लोके, विज्जति विविधा पुथु ।
रतनं बुद्ध समं नत्थि, तस्मा सोत्थि भवन्तु मे ॥ ५ ॥

संसार में जितने भी विविध भांति के बड़े से बड़े रत्न विद्यमान हैं पर वे बुद्ध रत्न के समान नहीं हैं। इस सत्य के प्रभाव से हमारा कल्याण हो ॥ ५ ॥

यो सन्निसिन्नो वर बोधि मूले, मारं ससेनं महतिं विजेत्वा ।
सम्बोधि मागञ्छि अनंत ञाणो लोकुत्तमो तं पणमामि बुद्धं

जिन अनन्त ज्ञानी लोकोत्तम भगवान् बुद्ध ने श्रेष्ठबोधि वृक्ष के नीचे विराजमान होकर महती सेना सहित मार (कामदेव) को

परास्त करके सम्बोधि (सम्यक् ज्ञान) लाभ किया था, उन भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

धर्म-वंदना

स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनायिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूहीति ।
धम्मं जीवित परियन्तं सरणं गच्छामि ॥ १ ॥

धर्म जो भगवान् बुद्ध के द्वारा सुन्दर रूप से वर्णन किया गया है, वह स्वयं प्रत्यक्ष करने का विषय है। इसके पालन करने एवं फल पाने के लिए सब काल और सब देश सुलभ है। यह धर्म सबको आचरण करके परीक्षा करने योग्य तथा भगवान् बुद्ध का स्थानापन्न और निर्वाण में पहुँचाने में समर्थ है। यह धर्म विद्वान् पुरुषों के स्वयं अनुभव करने का विषय है। मैं अपने जीवन पर्यन्त धर्म की शरण जाता हूँ ॥ १ ॥

ये च धम्मा अतीता च, ये च धम्मा अनागता ।
पच्चुप्पन्ना च ये धम्मा, अहं वंदामि सब्बदा ॥ २ ॥

भूत काल के बुद्ध प्रदर्शित धर्मों, भविष्य काल के बुद्ध प्रदर्शित धर्मों तथा वर्तमान काल के बुद्ध-प्रदर्शित धर्मों की मैं सदा वंदना करता हूँ ॥ २ ॥

नत्थि मे सरणं अञ्ञं, धम्मो मे सरणं वरं ।
एतेन सच्च वज्जेन, होतु मे जय मंगलं ॥ ३ ॥

हमारा कोई दूसरा शरण (आश्रय) नहीं है, केवल धर्म ही हमारा उत्तम शरण है। इस सत्य वाक्य के द्वारा हमारी जय और मंगल हो ॥ ३॥

उत्तमङ्गेन वंदेहं धम्मञ्च दुविधं वरं ।
धम्मे यो खलितो दोसो, धम्मो खमतु तं ममं ॥ ४ ॥

जो व्यावहारिक (संवृत) और पारमार्थिक श्रेष्ठ धर्म हैं। मैं उनकी नतमस्तक होकर वंदना करता हूँ। यदि अज्ञानता वश मुझसे कुछ दोष हुआ हो, तो धर्म उसको क्षमा करें ॥ ४ ॥

यं किंचि रतनं लोके, विज्जति विविधा पुथु ।
रतनं धम्म समं नत्थि, तस्मा सोत्थि भवन्तु मे ॥५॥

संसार में जितने भी विविध भाँति के बड़े से बड़े रत्न विद्यमान हैं। वे रत्न धर्म के समान नहीं हैं। इस सत्य के प्रभाव से हमारा कल्याण हो ॥ ५ ॥

अट्ठङ्गिको अरिय पथो जनानं,
मोक्खप्पवेसा उजुको व मग्गो ।
धम्मो अयं संति करो पणीतो,
नीय्याणिको तं पणमामि धम्मं ॥ ६ ॥

जो धर्म श्रेष्ठ आठ अंगों से युक्त, सबके मोक्ष प्राप्त करने का सरल और सीधा मार्ग, परम शांतिदायक, अतिश्रेष्ठ और निर्वाण में ले जाने वाला है। उस परम पवित्र धर्म को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

३. संघ-वंदना

सुपटिपन्नो भगवतो सावक संघो, उजुपटिपन्नो भगवतो सावक संघो, ञायपटिपन्नो भगवतो सावक संघो, सामीचिपटिपन्नो भगवतो सावक संघो। यदि दं चत्तारि

पुरिसयुगानि, अट्ठ पुरिस पुग्गला एस भगवतो सावक संघो आहुणेय्यो पाहुणेय्यो, दक्खिणेय्यो अञ्जलि-करणीय्यो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्साति। संघं जीवितं परियन्तं सरणं गच्छामि ॥ १ ॥

भगवान् बुद्ध के श्रेष्ठ शिष्यगण भगवान् के बताए हुए सुन्दर सरल, न्याय और समीचीन (ठीक) मार्ग पर चलने में कुशल हैं।

यह बुद्ध शिष्य गण ४ युग्म श्रेणियों में विभक्त हैं। यथा— (१) स्रोत आपन्न अर्थात् जो निर्वाण की तरफ जानेवाली धार में पड़ गया है, अब उसका पतन न होगा और सात जन्म के भीतर उसको अवश्य निर्वाण प्राप्त हो जायगा। (२) सकृदागामी अर्थात् जिसका जन्म अब संसार में केवल एक बार होगा, फिर निर्वाण प्राप्त कर लेगा, (३) अनागामी अर्थात् जो इस लोक में अब जन्म ग्रहण नहीं करेगा किंतु मरने के बाद अकनिष्ट ब्रह्मलोक में उत्पन्न हो कर अपने पुण्यों का फल भोगकर वहीं से निर्वाण में चला जायगा. और (४) अर्हत् अर्थात् जो इसी शरीर से इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

मार्ग और फल भेद से यहां बुद्ध-शिष्य-गण आठ पुद्गल श्रेणियों में विभक्त हैं। यथाः (१) स्रोत आपत्ति मार्ग लाभी, (२) स्रोत आपत्ति फल लाभी, (३) सकृदागामि मार्ग लाभी, (४) सकृदागामि फल लाभी, (५) अनागामि मार्ग लाभी, (६) अनागामि फल लाभी (७) अर्हत् मार्ग लाभी, और (८) अर्हत् फल लाभी। यह सब बुद्ध-शिष्यगण सेवा-पूजा, दान-सत्कार और प्रणाम के उपयुक्त पात्र हैं। मनुष्यों के पाप क्षय और पुण्य

वृद्धि के लिये यह परम पावन अलौकिक पुण्य क्षेत्र है। मैं अपने जीवन पर्यन्त संघ की शरण जाता हूँ ॥ १ ॥

ये च संघा अतीता च, ये च संघा अनागता।
पच्चुप्पन्ना च ये संघा, अहं वंदामि सब्बदा ॥ २ ॥

भूतकाल के बुद्ध-शिष्य-संघ, भविष्यत् काल के बुद्ध-शिष्य-संघ और वर्तमान काल के बुद्ध-शिष्य-संघ की मैं सदा वंदना करता हूँ ॥ २ ॥

नत्थि मे सरणं अञ्ञं संघो मे सरणं वरं।
एतेन सच्च वज्जेन, होतु मे जय मंगलं ॥ ३ ॥

हमारा कोई दूसरा शरण (आश्रय) नहीं है, केवल संघ ही हमारा उत्तम शरण (आश्रय) है। इस सत्य वाक्य के द्वारा हमारी जय और मंगल हो ॥ ३ ॥

उत्तमङ्गेन वंदेहं, संघं च तिविधुत्तमे।
संघे यो खलितो दोसो, संघो खमतु तं ममं ॥ ४ ॥

पाप और मल से रहित, मन, वाणी, और काया इन तीनों प्रकार से जो उत्तम और पवित्र संघ है। मैं उसकी नत-मस्तक होकर वंदना करता हूँ। यदि अज्ञानता वश मुझसे कोई अपराध हुआ हो, तो संघ उसे क्षमा करे ॥ ४ ॥

यं किंचि रतनं लोके, विज्जति विविधा पुथु।
रतनं संघ समं नत्थि, तस्मा सोत्थि भवन्तु मे ॥ ५ ॥

संसार में जितने भी विविध भाँति के बड़े से बड़े रत्न विद्यमान हैं पर वे संघ रत्न के समान नहीं हैं। इस सत्य के प्रभाव से हमारा कल्याण हो ॥ ५ ॥

संघो विसुद्धो वर दक्खिनेय्यो,
सन्तिन्द्रियो सब्बमलप्प हीणो ।
गुणेहि नेकेहि समिद्धिपत्तो,
अनासवो तं पणमामि संघं ॥ ६ ॥

जो संघ विशुद्ध और श्रेष्ट दान का पात्र है जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं जो सब प्रकार के मल विक्षेप, आवरण से रहित तथा जो अनेक प्रकार के अनघ गुणों से विभूषित और आश्रव (तृष्णा) रहित है, मैं उस संघ को प्रणाम करता हूँ ॥६॥

अष्ट विंशति बुद्ध-वंदना

वन्दे तह्णङ्करं बुद्धं, वन्दे मेधङ्करं मुनिं ।
सरणङ्करं मुनिं वन्दे, दीपङ्करं जिनं नमे ॥ १ ॥
वन्दे कोण्डञ्ञ सत्थारं, वन्दे मंगल नायकं ।
वन्दे सुमन सम्बुद्धं, वन्दे रेवत नायकं ॥ २ ॥
वन्दे सोभित सम्बुद्धं, अनोमदस्सिं मुनिं नमे ।
वन्दे पदुम सम्बुद्धं, वन्दे नारद नायकं ॥ ३ ॥
पदुमुत्तरं मुनिं वन्दे, वन्दे सुमेध नायकं ।
वन्दे सुजात सम्बुद्धं, पियदस्सिं मुनिं नमे ॥ ४ ॥
अत्थदस्सिं मुनिं वन्दे, धम्मदस्सिंजिनं नमे ।
वन्दे सिद्धत्थ सत्थारं, वन्दे तिस्स महामुनिं ॥५॥
वन्दे फुस्स महावीरं, वन्दे विपस्सि नायकं ।
सिखिं महामुनिं वन्दे, वन्दे वेस्सभू नायकं ॥ ६ ॥

ककुसन्ध मुनिं वन्दे, वन्दे कोणागम नायकं ।
कस्सपं सुगतं वन्दे, वन्दे गोतम महामुनिं ॥ ७ ॥
अट्ठवींसति ये बुद्धा, निब्बाण मतदायका ।
नमामि सिरसा निच्चं, वीतरागा समाहिता ॥८॥
एते अञ्ञच सम्बुद्धा, अनेक सत कोटियो ।
सब्बे बुद्धा समसमा, सब्बे बुद्धा महिद्धिका ॥ ६ ॥
सतरंसीव उत्पन्ना, महातम विनोदना ।
जलित्वा अग्गिक्खन्धोव, निब्बुता ते समावका ।१०।
सब्बे दस बलूपेता, वेसारज्जे हुपागता ।
सब्बे ते पटि जानन्ति, आस भट्ठान मुत्तमं ॥११॥
सिंहनादं नादन्तेते, परिसासु विसारदा ।
ब्रह्म चक्कं पवत्ते न्ति, लोके अप्पटिवत्तियं ॥१२॥
उपेता बुद्ध धम्मेहि. अट्ठरम हि नायका ।
बत्तिंस लक्खणु पेतासीत्यानु व्यंजन धरा ॥१३॥
व्यामप्पभाय सुप्पभा, सब्बेते मुनि कुञ्जरा ।
बुद्धा सब्बञ्ञुतो एते सब्बे खीणासवा जिना ॥१४॥
महप्पभा महातेजा महापञ्ञा महब्बला ।
महाकारुणिका धीरा, सब्बेसानं सुखावहा ॥१५॥
दीपा नाथा पतिट्ठाता च ताणा लेना च पाणिनं ।
गती, बन्धु महस्सासा, सरणं च हिते सिनो ॥१६॥
सदेवकस्स लोकस्स सब्बे एते परायणा ।

ते साहं सिरसा पादे, वन्दामि पुरिसुत्तमे ॥१७॥
वचसा मनसा चेव वन्दामेते तथागते,
सयने आसने ठाने, गमने चापि सब्बदा ॥१८॥
तेसं सच्चेन सीलेन, खन्ती मेत्ता बलेन च ।
तेपि सब्बेनु रक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च ॥१९॥

तह्नांकर बुद्ध को वंदना, मेधांकर बुद्ध को वंदना, शरणं कर बुद्ध को वंदना, दीपंकर बुद्ध को वंदना ॥ १ ॥

कोण्डञ्ञ बुद्ध को वंदना, मंगल नामक बुद्ध को वंदना, सुमन सम्बुद्ध को वंदना, रेवत नामक बुद्ध को वंदना ॥ २ ॥

शोभित सम्बुद्ध को वंदना, अनोमदस्सी बुद्ध को वंदना, पद्म सम्बुद्ध को वंदना, नारद नामक बुद्ध को वंदना ॥ ३ ॥

पद्मोत्तर बुद्ध को वंदना, सुमेध नामक बुद्ध को वंदना, सुजात सम्बुद्ध को वंदना, प्रियदर्शी बुद्ध को वंदना ॥ ४ ॥

अर्थदर्शी बुद्ध को वंदना, धर्मदर्शी बुद्ध को वंदना, सिद्धार्थ बुद्ध को वंदना, तिष्य बुद्ध को वंदना ॥ ५ ॥

फुस्स सम्बुद्ध को वंदना, विपश्यी बुद्ध को वंदना, सिखि सम्बुद्ध को वंदना, वेस्सभू बुद्ध को वंदना ॥ ६ ॥

ककुसंध बुद्ध को वंदना, कोणागम बुद्ध को वंदना, कश्यप बुद्ध को वंदना और गोतम बुद्ध को वंदना है ॥ ७ ॥

ये अट्ठाइसों बुद्ध जो निर्वाणामृत के दानकारी, वीतराग और समाहित हैं, मैं उनको नत मस्तक होकर नित्य वंदना करता हूँ ॥ ८ ।

ये और इनके अतिरिक्त (बुद्ध-परंपरा में) जो करोड़ों बुद्ध हुए हैं और होंगे, वे सब असम, सम और महाऋद्धि सम्पन्न होते हैं अर्थात् भिन्न भिन्न समय, स्थान, गोत्र तथा वंश में जन्म

होने के कारण असमता रहने पर भी सब बराबर और अलौकिक दिव्य शक्तियों से पूर्ण होते हैं । ६ ॥

ये बुद्ध गण महा अंधकार को नाश करते हुए सूर्य की रश्मियों की तरह उत्पन्न होते और अग्निपुंज की तरह जलकर अपने शिष्यों (श्रावकों) सहित निर्वाण को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

ये सब बुद्ध, दस बुद्ध बलों को धारण करने वाले और चार वैशारद्यों अर्थात् चार अद्वितीय पारदर्शिताओं से विभूषित तथा परमार्षभ अर्थात् सर्वोच्चत्तम पद प्राप्त किये होते हैं ॥११॥

ये लोग विशारद परिषद अर्थात् विद्वानों की सभा में सिंहनाद पूर्वक घोषणा करते हैं तथा लोक में अप्रवर्तित ब्रह्मचक्र (धर्मचक्र) प्रवर्तन करते हैं ॥ १२ ॥

ये सब बुद्ध लोग अठारह बुद्ध गुणों से युक्त तथा बत्तीस प्रकार के शारीरिक महापुरुषों के लक्षणों और अस्सी अनुव्यंजनों (चिन्हों) से विभूषित होते हैं ॥ १३ ॥

ये सब मुनि कुंजर व्याम प्रभा से सुप्रभान्वित सर्वज्ञ, बुद्ध और आश्रव-रहित जिन होते हैं ॥ १४ ॥

ये सब बुद्ध प्रभा, तेज, और बल से पूर्ण तथा महा कारुणिक धैर्य शक्ति-संपन्न और सबके सुख-संस्थापक होते हैं ॥१५॥

ये सब बुद्ध भव सागर में भासमान जीवों के लिए द्वीप स्वरूप, तथा अनाथों के नाथ, अप्रतिष्ठितों की प्रतिष्ठा, त्राण हीनों के त्राण, आलयहीनों के आलय, अगतियों के गति, बंधुहीनों के बंधु, नैराशों के आशा, अशरणों के शरण और सबके हितकारी होते हैं ॥ १६ ॥

ये सब बुद्ध देवता और मनुष्यादि सब लोगों के परम आश्रय है। मैं इन सब पुरुषोत्तमों के श्री पादपद्मों में नत मस्तक होकर वंदना करता हूँ ॥ १७ ॥

सोते, वैठते, चलते और खड़े रहते हर समय मैं अपने मन, वाणी और काया से इन सब बुद्धों की वंदना करता हूँ ॥ १८ ॥

इन बुद्धों के प्रभाव से तथा इनके सत्य, शील, क्षमा और मैत्री आदि सद्‌गुणों के प्रभाव से सब लोगों का कल्याण हो, सब निरुज और सुखी हों ॥ १९ ॥

(सम्पूर्ण बुद्ध चैत्य बुद्ध-धातु बोधि-द्रुम और बुद्ध-प्रतिमाओं की वंदना) ।

वंदामि चेतियं सब्बं, सबट्ठानेसु पतिट्ठितं ।
सारीरिक धातु महाबोधिं, बुद्ध रूपं सकलं सदा ॥

सब जगहें में प्रतिष्ठित, बुद्ध चैत्य, बुद्ध धातु, महाबोधि वृक्ष और बुद्ध प्रतिमाओं की मैं सदा वंदना करता हूँ ।

वंदना निट्ठिता

भावना परिच्छेद

दानं ददन्तु सद्धाय,
सीलं रक्खन्तु सब्बदा ।
भावना भिरता होन्तु,
एतं बुद्धानु सासनं ॥

श्रद्धा पूर्वक दान करो, सर्वदा शील का पालन करो और भावना (ध्यान) में रत रहो। यही बुद्धों की शिक्षा है।

बौद्ध शास्त्रों में भिन्न-भिन्न साधकों के लिए चालीस (४०) प्रकार के कम्मट्ठान (कर्मस्थान) भावनाओं का वर्णन है। भावना कहते हैं ध्यान को। कर्मस्थान अभ्यास के आलंबन का नाम है। किसी आलंबन पर ध्यान या भावना का अभ्यास कम्मट्ठान (कर्मस्थान) भावना कहलाता है। ४० भावनाओं में से ब्रह्म विहार भावना सर्वोपयोगी समझ कर यहाँ दी जाती है। बाकी कर्मस्थान भावना की शिक्षा आचार्य द्वारा ग्रहण करनी चाहिए।

ब्रह्म विहार भावना

ब्रह्म या ब्रह्मा लोग जिस भावना या ध्यान में विहार करते हैं, उसे 'ब्रह्म विहार भावना' कहते हैं। ब्रह्म या ब्रह्मा के समान जो लोग भावना या ध्यान मे लीन रहते हैं, उनको ब्रह्मभूत, ब्रह्म विहारी या ब्रह्मचारी कहते हैं।

यह भावना (ध्यान) चार प्रकार की है (१) मैत्री, (२) करुणा, (३) मुदिता और (४) उपेक्षा।

(१) मैत्री भावना भी चार प्रकार की है—(क) सब्बे सत्ता अवेरा होन्तु (सब प्राणी शत्रु-रहित हों।), (ख) सब्बे सत्ता अव्यापज्जा होन्तु (सब प्राणी विपद्-रहित हों), (ग) सब्बे सत्ता अनिघा होन्तु (सब प्राणी रोग-रहित हों), (घ) सब्बे सत्ता सुखी अत्तानं परिहरन्तु (सब प्राणी सुख से रहें।)

(२) करुणा भावना एक प्रकार की है—

सब्बे सत्ता दुक्खा मुच्चन्तु सब प्राणी दुख रहित हों।

(३) मुदिता भावना एक प्रकार की है—सब्बे सत्ता यथा लद्धा सम्पत्तितोमाविगच्छन्तु (सब प्राणी अपने सत्कर्म द्वारा प्राप्त सुख से वंचित न हों।)

(४) उपेक्षा भावना एक प्रकार की है:—

सब्बे सत्ता कम्मस्सका (सब प्राणियों का अपना शुभाशुभ कर्म ही सच्चा साथी है दूसरा कोई नहीं।)

विधिः—पद्मासन लगाकर या साधारण पलथी मारकर जिस तरह सुख पूर्वक बैठ सकें, बैठना चाहिए तथा शरीर और गर्दन को बिलकुल सीधा रखना चाहिए तब अपने और सबके कल्याण के लिए नीचे लिखे अनुसार भावनाओं तथा ध्यानों को सावधान होकर अच्छी तरह करना चाहिये।

अहम् अवेरो होमि अव्यापज्जो होमि,
अनिघो होमि सुखी अत्तानं परिहरामि।
अहंविय मय्हं आचरियुपज्झाया,

माता पितरो हित सत्ता मज्झत्तिक सत्ता ।
वेरी सत्ता अवेरा होन्तु अव्यापज्जा होन्तु,
अनिघा होन्तु सुखी अत्तानं परिहरन्तु ।
दुक्खा मुच्चन्तु यथा लद्ध सम्पत्तितो,
मा विगच्छन्तु कम्मस्सका ॥ १ ॥

हम शत्रु,विपद् और रोग आदि से रहित हो सुख से वास करें। हमारी ही तरह आचार्य, उपाध्याय, माता-पिता मित्रगण, मध्यस्थ और शत्रु लोग भी शत्रु विपद् एवं रोग-विहीन हों, सुख पूर्वक रहें और दुःख से छूट जायँ तथा अपने सत्कर्म द्वारा प्राप्त सम्पत्ति से वंचित न हों। शुभाशुभ कर्म ही सब जीवों का अपना सच्चा साथी है; इसके सिवाय और कोई नहीं ॥ १ ॥

इमस्मिं ठाने इमस्मिं गोचर गामे इमस्मिं नगरे ।
इमस्मिं देसे इमस्मिं जम्बूद्वीपे इमस्मि पठवियं ॥
इमस्मिं चक्कवाले इस्सरजना सीमट्ठक देवता सब्बे ।
सत्ता अवेरा होन्तु,अव्यापज्जा होन्तु अनिघा होन्तु ॥
सुखी अत्तानं परिहरन्तु दुक्खामुच्चन्तु यथा लद्ध ।
सम्पत्तिता मा विगच्छन्तु कम्मस्सका ॥ २ ॥

हमारे इस स्थान के, इस बस्ती के, इस नगर के, इस देश के, इस जम्बूद्वीप के इस पृथ्वी के, इसी चक्रवाल अर्थात् सौर जगत् के ऐश्वर्यशाली गण, सीमास्थ देवता गण एवं समस्त प्राणी गण शत्रु, विपद्, रोग और दुःख से छूट जायँ तथा अपने सत्कर्म द्वारा प्राप्त सम्पत्ति से वंचित न हों। इस जगत् में सब प्राणियों का अपना शुभाशुभ कर्म ही सच्चा साथी है ॥ २ ॥

पुरत्थिमाय दिसाय दक्खिनाय दिसाय ।
पच्छिमाय दिसाय उत्तराय दिसाय ॥
पुरत्थिमाय अनुदिसाय दक्खिनाय अनुदिसाय ।
पच्छिमाय अनुदिसाय उत्तराय अनुदिसाय ॥
हेट्ठिमाय दिसाय उपरिमाय दिसाय ।
सब्बे सत्ता सब्बे पाणा, सब्बेभूता सब्बे पुग्गला ॥
सब्बे अत्तभाव परियपन्ना सब्बा इत्थियो सब्बे पुरिसा ।
सब्बे अरिया सब्बे अनरिया सब्बे देवा सब्बे मनुस्सा ॥
सब्बे अमनुस्सा सब्बे विनपातिका अवेरा होन्तु ॥
अव्यापज्जा होन्तु अनीघा होन्तु सुखी अत्तानं परिहरन्तु
दुक्खा मुञ्चन्तु यथालद्ध सम्पत्तितो मा विगच्छन्तु
कम्मस्सका ॥ ३ ॥

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, नीचे, ऊपर, इन दसों दिशाओं में वास करने वाले सत्व, प्राणी, भूत, पुद्गल, देहधारी, ये पाँच नामांतर पुद्गल (व्यक्ति) गण तथा स्त्री-पुरुष, आर्य-अनार्य, देवता, मनुष्य, अमनुष्य, विनिपातिक (नारकीय प्राणीगण) ये आठ प्रकारान्त पुद्गल (व्यक्ति) गण ये सब शत्रु, विपद्, रोग रहित हों, सुख से वास करें और दुःख से छूट जायँ तथा अपने सत्कर्म द्वारा लब्ध सम्पत्ति से वंचित न हों। इस जगत् में शुभाशुभ कर्म ही अपना सच्चा साथी है ॥ ३ ॥

यं दुन्निमित्तं अवमंगलं च, यो च मनापो सकुणस्स

सद्दो । पापग्गहो दुस्सुपिनं अकन्तं बुद्धानुभावेन विनास-मेन्तु ॥ ३ ॥

धम्मानुभावेन विनास मेन्तु, सङ्घानुभावेन विनासमेन्तु॥४॥

जो कुछ दुर्निमित्त, अमंगल, अशकुन, पशु-पक्षियों का शब्द, पाप-ग्रह और भयानक दुस्वप्न हैं, वे सब भगवान् बुद्ध के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों। धर्म के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों और संघ के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों।

पुरत्थिमस्मिं दिसाभागे सन्तिदेवा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥
दक्खिनास्मिं दिसाभागे सन्तिदेवा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥
पच्छिमस्मिं दिसाभागे सन्तिदेवा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥
उत्तरस्मिं दिसाभागे, सन्तिदेवा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥
पुरत्थिमेन धरट्ठो दक्खिणेन विरुल्हको।
पच्छिमेन विरुपक्खो कुवेरो उत्तरं दिसं।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन चाति॥

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में महा प्रभाव-शाली देवता लोग वास करते हैं; वे लोग सब प्राणियों की रक्षा करें और सब लोग आरोग्य तथा सुखी रहें।

सुमेरु के पूव ओर धृतराष्ट्र, दक्षिण ओर विरुढ़क, पश्चिम ओर विरूपाक्ष और उत्तर ओर कुवेर नाम के चार महायशस्वी लोकपाल महाराजिक देवतागण वास करते हैं; वे लोग भी सब प्राणियों की रक्षा करें और सब लोग आरोग्य तथा सुखी रहें।

आकासट्ठा च भूमट्ठा देवानागा महिद्धिका।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥
इद्धिमन्तो च ये देवा वसंता इध सासने।
तेपि सब्बे अनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च॥

महादिव्य शक्ति सम्पन्न आकाशवासी एवं भूमिवासी देवगण और नागगण तथा महादिव्य-शक्ति-सम्पन्न देवगण जो इस शासन में वास करते हैं, वे लोग भी सब प्राणियों की रक्षा करें तथा सब लोग निरोग और सुखी रहें।

दुक्खप्पत्ता च निद्दुक्खा भयप्पत्ता च निब्भया;
सोकप्पत्ता च निस्सोका होन्तु सब्बेपि पाणिनो।
मेघो वस्सतु कालेन सस्स सम्पत्ति होतु च;
फीतो भवतु लोकोच राजा भवतु धम्मिको।
सब्बेसु चक्कवालेसु यक्खा देवा च ब्रह्मानो;
यं अह्मेहि कतं पुञ्ञं सब्ब सम्पत्ति साधकं।
सब्बे तं अनुमोदित्वा समग्गा सासनरता;
पमाद रहिता होन्तु आरक्खासु विसेसतो।

सब दुःखित प्राणी दुख से रहित हों, भयभीत प्राणी भय से रहित हों और शोकग्रसित प्राणी शोक से रहित हों।

उचित समय पर मेघ जल बरसावें, धान्य और सम्पत्तियों से धरती परिपूर्ण हों। सब प्रकार से जगत् समृद्धिशाली हो एवं राजा धार्मिक हों।

हमारे द्वारा सर्व सम्पत्तिदायक पुण्य जो सम्पादित हुए हैं, उन पुण्यों को समस्त चक्रवाल वासी देवता, यक्ष और ब्रह्मागण अनुमोदन करके एकता बद्ध होकर बुद्ध शासन में रत हों तथा प्रमाद-रहित होकर विशेष-रूप से रक्षा कार्यों में सतर्क हों।

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो;
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु मा कञ्चि दुक्खमागमा।

सब प्राणी सुखी हों, सब कुशल क्षेम से रहें; सब कल्याण कर दृष्टि से देखें, किसी को कोई दुःख प्राप्त न हो।

ब्रह्म विहार भावना निट्ठिता।

परित्राण परिच्छेद

परित्राण प्रार्थना मंत्र

विपत्ति पटिबाहाय, सब्ब सम्पत्ति सिद्धिया ।
सब्ब रोग विनामाय, भवे दीघायु दायकं ॥
सब्ब दुक्ख विनासाय, भवे निब्बाण मन्तिके ।
भन्ते अनुग्गहं कत्वा परित्तं ब्रूथ मंगलं ॥

साधारण देवता आमंत्रण-मंत्र

समन्त चक्क वालेसु अत्रागच्छन्तु देवता ।
सद्धम्मं मुनि राजस्स, सुणन्तु सग्गमोक्खदं ॥
धम्म-सवण-कालो अयं, भदन्ता । (तीन बार)

हे समस्त चक्रवाल वासी देवगण ! आप लोग यहाँ आइए और मुनिराज भगवान् बुद्ध के स्वर्ग और मोक्षप्रद सत्य धर्म का श्रवण कीजिए । हे माननीय देव गण ! आप लोगों के धर्म सुनने का यह उपयुक्त समय है ।

विशेष देवता आमंत्रण - मंत्र

ये सन्ता सन्त चित्ता तिसरण-सरणा एत्थ लोकंतरे वा भुम्मा भुम्मा च देवा गुण गण गहण व्यावता सब्ब कालं ।

एते आयन्तु देवा, वरकनकमये मेरु राजे वसन्तो,
सन्तो सन्तो सहेतुं मुनिवर वचनं सोतुमग्गं समग्गं ॥

यहाँ या किसी लोकान्तर, भूमि या आकाश अथवा सुवर्णमय श्रेष्ठ सुमेरु पर्वत पर वास करने वाले शान्त प्रकृति और शान्त चित्त, त्रिशरण शरणागत तथा सर्वदा पुण्य कार्यों में लगे हुए जो सब देवता लोग हैं, वे सब परम सन्तोष और शान्ति प्रद भगवान् बुद्ध के वाक्यों को श्रवण करने के लिए पधारें।

देवताओं को पुण्यदान और रक्षा की प्रार्थना

सब्बेसु चक्क वालेसु, यक्खा देवा च ब्रह्मानो।
यं अम्हेहि कतं पुञ्ञं, सब्ब सम्पत्ति साधकं ॥
सब्बे तं अनुमोदित्वा, समग्गा सासन रता।
पमाद रहिता होन्तु, आरक्खासु विसेसतो ॥

सर्व सम्पत्तिदायक पुण्य जो हमारे द्वारा सम्पादित हुए हैं, उन पुण्यों को समस्त चक्रवाल वासी देवता, यक्ष और ब्रह्मागण अनुमोदन करके एकताबद्ध और बुद्ध शासन-रत हों तथा प्रमाद रहित होकर विशेष रूप से रक्षा कार्यों में सतर्क हों।

बुद्ध शासन की उन्नति तथा सबके हित और रक्षा की कामना

सासनस्स च लोकस्स, वुड्ढि भवतु सब्बदा।
सासनम्पि च लोकं च, देवा रक्खन्तु सब्बदा ॥
सद्धिं होन्तु सुखी सब्बे, परिवारे हि अत्तनो।
अनीघा सुमना होन्तु, सह सब्बेहि ञातीभि ॥

धर्म और जगत् की सर्वदा श्री वृद्धि हो। देवता गण,धर्म और जगत् की सर्वदा रक्षा करें। सब कोई अपने अपने परिवार और ज्ञाति वर्ग के सहित शारीरिक और मानसिक सुख लाभ करें और सब प्रकार के दुःख से रहित हों।

राजतो वा, चोरतो वा, मनुस्सतो वा अमनुस्सतो वा, अग्गियतो वा, उदकतो वा, पिसाचतो वा, खानुकतो वा, कण्टकतो वा, नक्खत्ततो वा, जनपद रोगतो वा, असद्धम्मतो वा, असन्दिट्ठितो वा, असप्पुरिसतो वा, चण्ड-हत्थि-अस्स मिग-गोन कुक्कुर-अहि-विच्छिक-मणिसप्पि-दीपि-अच्छ-तरच्छ-सूकर-महिंस-यक्ख रक्ख-सादीहि नाना भयतो वा, नाना रोगतो वा, नाना उप-द्दवतो वा, सब्बे आरक्खं गहन्तु।

राजभय, चोरभय, मनुष्यभय, अमनुष्य भय, अग्निभय, जलभय, पिशाच भय, गोंजाभय, कंटक भय,नक्षत्रभय, विशूचिका भय पापभय,मिथ्या दृष्टिभय, असज्जनभय, उन्मत्त वानर, हाथी, तुरंग, हरिण, सांड़, कुत्ता, भुजंग, बिच्छू, मणिधर सर्प, व्याघ्र, उल्लूक, तरछू, सूकर, भैंसा, यक्ष और राक्षस इत्यादि के नाना विधि भयों से तथा नाना विधि रोगों और उपद्रवों से सबकी रक्षा हो।

करणीय मेत्त सुत्तं

(करणीय मैत्री सूत्र)

भूमिका

यस्मानुभावतो यक्खा नेव दस्सेन्ति भिंसनं ।
यम्हि चेवानुयुञ्जेन्तो रत्तिं दिवमतन्दितो ॥ १ ॥
सुखं सुपति सुत्तो च पापं किंचि न पस्सति ।
एवमादि गुणापेतं परित्तं तं भणामहे ॥ २ ॥

जिस परित्राण मत्र के प्रभाव से यक्ष लोग भय नहीं दिखा सकते तथा भय से भीत होकर दिन रात चितित और निद्राहीन व्यक्ति भी सुख से सो जाता है और सोया हुआ व्यक्ति कोई दुस्स्वप्न नही देखता, ऐसे उत्तम गुणमय भगवान बुद्ध का कहा हुआ परित्राण (रक्षा-मंत्र) कहूँगा। (१-२)

सूत्रारम्भ

करणीयमत्थ कुसलेन, यंतं सन्तं पदं अभिसमेच्च ।
सक्को उजू च सुजू च, सुवचो चस्स मुदु अनतिमानो ॥१॥

कल्याण साधन मे निपुण, शान्ति पद (निर्वाण) चाहने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह ऋजु (सरल कुटिलता-हीन) सुऋजु (अति सरल) सुवच (= मिथ्या, पिशुन, कठोर और व्यर्थ इन चार प्रकार के वाणी दोषों से रहित वचन) बोलने वाला मृदु स्वभाव का और अभिमान हीन हो ॥ १ ॥

सन्तुस्सको च सुभरो च अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति।
सन्तिन्द्रियो च निपको च, अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो २

सन्तुष्ट चित्त, सुभरणीय (मिताहारी), अल्पकृत्य (बहुत व्यर्थ कामों में न फँसने वाला), संलघुक वृत्ति (थोड़े में ही सन्तुष्ट), शान्त इन्द्रिय, प्रज्ञावान्, अप्रगल्भ (गम्भीर, चंचलता हीन) और जाति कुल के मिथ्या भिमान् में अनासक्त हो ॥२॥

न च खुद्दं समाचरे किंचि, येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥३

ऐसा कोई क्षुद्र (नीच) आचरण न करे जिससे दूसरे विज्ञजन निंदा कर सकें। (सदैव अपने मन में यह भावना करनी होगी) सब प्राणी सुखी हों। कुशल क्षेम से रहें, आत्म सुख को पायें ॥ ३ ॥

ये केचि पाणभूत'त्थि, तसा वा थावरा वा अनवसेसा।
दीघा वा ये महन्ता वा, मज्झिमारस्सका अणुकथुला॥४॥

स्थावर या जंगम, दीर्घ या महान, मझले या छोटे, सूक्ष्म या स्थूल जितने भी प्राणी हैं, (वे सब सुखी हों) ॥ ४ ॥

दिट्ठा वा येव अदिट्ठा, ये च दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता वा सम्भवेसी वा, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥५॥

जो सब प्राणी दृष्ट अर्थात् आँख से दिखाई पड़ने वाले हैं और जो अदृष्ट हैं, जो दूर वास करते हैं या निकट वास करते हैं, जो जन्म ले चुके हैं, या जो जन्म लेंगे, वे सभी प्राणी सुखी हों ॥ ५ ॥

न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञेथ कत्थचिनं कंचि ।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा, नाञ्ञ मञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य॥६

परस्पर एक दूसरे से बंचना अर्थात् ठगी न करे, किसी की अवज्ञा न करे। क्रोध और हिंसा के वश में होकर किसी के लिए दुःख की कामना न करे ॥ ६ ॥

माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एक पुत्तमनुरक्खे ।
एवम्पि सब्बभूतेसु, मानसम्भावये अपरिमाणं ॥ ७ ॥

माता जिस प्रकार अपना जीवन देकर भी अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती रहती है, उसी तरह सब प्राणियों के साथ अतुल प्रेम का बरताव करना चाहिए ॥ ७ ॥

मेत्तं च सब्ब लोकस्मिं मानसम्भावये अपरिमाणं ।
उद्धं अधो च तिरियं च, असम्बाधं अवेरं असपत्तं ॥८॥

ऊपर, नीचे और बीच के सब लोक या प्राणियों के प्रति वैर विरोध और शत्रुता रहित अप्रमेय मैत्री का बरताव करे ॥८॥

तिट्ठं चरं निसिन्नो वा, सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो
एतं सतिं अधिट्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारं इध माहु ॥९॥

खड़े, चलते, बैठते और सोते जब तक बेखबर न हो इसी स्मृति में रहे, एवं यही मैत्री-भावना करता रहे। इसी को ब्रह्म बिहार (भावना) कहते हैं ॥ ९ ॥

दिट्ठिं च अनुपगम्म सीलवा दस्सनेन सम्पन्नो ।
कामेसु विनेय्य गेधं न हि जातु गब्भ सेय्यं पुनरेति ॥१०

शीलवान् सम्यक् दृष्टि-सम्पन्न, मिथ्यादृष्टि को न ग्रहण कर, काम वासना को दमन करके फिर दुबारा माँ के गर्भ में नहीं सोता ॥ १० ॥

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु सब्बे होन्तु च खेमिनो।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु मा किंचि दुक्खमागमा ॥ ११ ॥

सब प्राणी सुखी हों, सब कुशल क्षेम से रहें, और सब कोई अपने कल्याण को देखें, किसी को कभी कोई दुःख न प्राप्त हो ॥ ११ ॥

महामंगल सुत्तं

(महामंगल सूत्र)

भूमिका

यं मंगलं द्वादसु चिंतियसु सदेवका,
सोत्थानं नाधि गच्छन्ति अट्ठतिंसंच मंगलं।
देसितं देवदेवेन सब्ब पाप विनासनं,
सब्ब लोक हितात्थाय मंगलं तं भणामहे।

जब १२ वर्ष तक देवता और मनुष्य जिस मंगल अर्थात् कल्याण की बड़ी चिन्ता करके न जान सके, तब उन लोगों पर दया करके सब प्रकार के पाप और दुःखों के विनाशक ३८ मांगलिक विधानों को देवादिदेव भगवान् बुद्ध ने उपदेश किया। उन मांगलिक विधानों को सबके हित के लिए कहता हूँ।

सूत्रारम्भ

एवं मे सुतं-एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिंडिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा

देवता अभिक्कंताय रत्तिया अभिक्कंतवण्णा केवल कप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसंकमि उपसंकमित्वा भगवंतं अभिवा देत्वा एकमंतं अट्ठासि। एक मंतं ठिता खो सा देवता भगवंतं गाथाय अज्झभासि—

(भगवान् बुद्ध के प्रिय शिष्य महाथेर आनन्द बौद्धों की पहली सभा के अधिवेशन के समय महाकाश्यप आदि भिक्षु संघ के सामने इस प्रकार बोले—)

मैंने इस प्रकार सुना है कि एक समय भगवान् श्रावस्ती नगर के निकट जेतवन नामक उद्यान में अनाथपिंडक (श्रेष्ठी) द्वारा बनवाये हुए आराम (विहार-मठ) में वास कर रहे थे, उस समय एक अतिशय सुन्दर दिव्य प्रकाशमान देवता जेतवन को आलोकित करता हुआ रात्रि के अन्त में भगवान् के पास उपस्थित हो अभिवादन कर एक ओर खड़ा होकर यह गाथा बोला—

बहु देवा मनुस्सा च मंगलानि अचिन्तयुं ।
आकंखमाना सोत्थानं ब्रूहि मंगलमुत्तमं ॥ १ ॥

इस लोक और परलोक में सुख पाने की आशा से कितने ही देवता और मनुष्यों ने बड़ी चिन्ता की किन्तु किस प्रकार से मंगल अर्थात् कल्याण प्राप्त होगा, वे यह निश्चय न कर सके। अतएव आप कृपा करके उत्तम मंगल प्राप्ति के उपाय को कहिए।

इस प्रकार उस देवता के प्रार्थना करने पर भगवान् बुद्ध बोले—

असेवना च बालानं पंडितानं च सेवना।
पूजा च पूजनीयानं एतं मंगलमुत्तमं ॥ २ ॥

मूर्ख लोगों का संग न करना, विद्वानों का सत्संग करना तथा पूजनीय व्यक्तियों की पूजा करना उत्तम मंगल है।

पतिरूपदेसवासो च पुब्बे च कतपुञ्ञता।
अत्तसम्मापणिधि च एतं मंगलमुत्तमं ॥ ३ ॥

उपयुक्त देश में वास, पुण्याचरण और अपने (मन में) सम्यक्-प्रणिधान या शुभ-संकल्प करना, उत्तम मंगल है ॥ ३ ॥

बाहु सच्चं च सिप्पं च विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा एतं मंगलमुत्तमं ॥ ४ ॥

बहुश्रुत होना (शास्त्रों का खूब ज्ञान होना), शिल्प-विद्याओं का जानना, विनय (चरित गठन) में सुन्दर रूप से शिक्षित होना, और सुन्दर वचन बोलना, उत्तम मंगल है ॥४॥

माता पितु उपट्ठानं पुत्तदारस्स संगहो।
अनाकुला च कम्मन्ता एतं मंगलमुत्तमं ॥ ५ ॥

माता-पिता की सेवा करना, स्त्री-पुत्रों का पालन-पोषण करना और पाप-रहित व्यवसाय करना उत्तम मंगल है। ५॥

दानंच धम्मचरिया च ञातकानंच संगहो।
अनवज्जानि कम्मानि, एतं मंगलमुत्तमं ॥ ६ ॥

दान देना, (काय वचन और मन से) धर्म का आचरण करना, अपने कुटुम्ब वालों का पालन करना और निर्दोष कर्मों का करना उत्तम मंगल है ॥ ६ ॥

आरति विरति पापा मज्जपाना च सञ्ञमो ।
अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मंगलमुत्तमं ॥ ७ ॥

(मानसिक पापों मे) अरति (अनासक्ति), शारीरिक और वाचनिक पापों मे विरति (= परित्याग), मद्यादि पान मे सयम अर्थात् मदिरा, भॉग, गाजा आदि नशे की वस्तुओं से वचना, धर्म में प्रमाद न करना उत्तम मगल है ॥७॥

गार वो च निवातो च, संतुट्ठी च कतञ्ञुता ।
कालेन धम्म सवनं एतं मंगलमुत्तमं ॥ ८ ॥

(पूजनीय व्यक्तियो मे) गौरव रखना और (उन लोगों के निकट) विनीत रहना, सदा सन्तुष्ट रहना, कृतज्ञता अर्थात् कोई अपने साथ कुछ उपकार करे, तो उसका खयाल रखना तथा उचित समय से धर्म का सुनना उत्तम मगल है ॥ ८ ॥

खंती च सोव चस्सता, समणानं च दस्सनं ।
कालेन धम्म माकच्छा, एतं मंगलमुत्तम ॥ ६ ॥

क्षमाशील होना, गुरुजनो के आदेश का पालन करना, श्रमणों (महात्माओं) के दर्शन करना और यथा समय धर्म चर्चा करना उत्तम मगल है ॥ ९ ॥

तपो च ब्रह्मचरियंच अरियसच्चानदस्सनं ।
निब्बाण सच्छिकिरिया च एतं मंगलमुत्तम ॥१०॥

तपस्या (शुभ कर्मों के लिए कष्ट करना) ब्रह्मचर्य का पालन करना, आर्य सत्य अर्थात् दु ख, दु ख का कारण, दु ख-निरोध और दु ख निरोध के उपायों का प्रत्यक्ष करना और निर्वाण का साक्षात्कार करना उत्तम मंगल है ॥ १० ॥

फुट्ठस्स लोक धम्मेहि चित्तं यस्स न कंपति ।
असोकं विरजं खेमं, एतं मंगलमुत्तमं ॥ ११ ॥

लाभ अलाभ, यश-अपयश, निन्दा-प्रशंसा, और सुख-दु ख इन आठ प्रकार के लोक-धर्मों के द्वारा चित्त का विचलित न होना तथा शोक-रहित होना, राग, द्वेष और मोह रूपी रज से रहित होना और क्षेम सहित होना उत्तम मंगल है।

एतादिसानि कत्वान सब्बत्थमपराजिता ।
सब्बत्थसोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मंगलमुत्तमं ॥१२॥

ऊपर जिन अड़तीस मंगल कर्मों की बात कही गई है उनसे सर्वत्र जय और मंगल प्राप्त होता है। यही सब देवताओं और मनुष्यों के लिए उत्तम मंगल है।

मंगल सूत्रं सम्पूर्णम् ।

पराभव सुत्तं

(पराभव सूत्र)

सूत्रारम्भ

एवं में सुतं एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिंडिकस्स आरामे । अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवल कप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनु पसंकमि उपसंकामित्वा भगवंतं

१—मंगल सूत्र देसना सुनने के बाद देवता लोग आपस में यह विचार करने लगे कि भगवान् ने देव और मनुष्यों के मंगल या सुख की वृद्धि के लिए जो विधि आत्मक उपदेश दिया है, उसे तो हम लोगों ने सुना लेकिन अब अमंगल या पराभव (विनाश के कारणों को भी निषेधात्मक उपदेश द्वारा सुनना चाहिए कि किन किन

अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि, एकमंतं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि ।

मैंने ऐसा सुना है कि एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती नगर में अनाथपिंडिक सेठ के जेतवन-विहार में विहार करते थे। उस समय आधी रात बीत जाने के बाद किसी एक देवता ने अपने अत्यन्त दिव्य वर्ण द्वारा सम्पूर्ण जेतवन को सुशोभित करते हुए जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान् को अभिवादन करके एक स्थान पर बैठकर (इस) गाथा द्वारा भगवान् से कहा:—

पराभवन्तं पुरिसं मयं, पुच्छाम गोतम ।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, किं पराभवतो मुखं ॥ १ ॥

हे गोतम ! हम आपसे पूछने के लिए आये हैं, सो हे भगवन् ! हम आपसे पूछते हैं कि (दोनों लोकों अर्थात् यह लोक और परलोक से) पराभव (पतन, गिरावट) को प्राप्त हुए मनुष्यों के पराभव (पतन) का कारण क्या है ? ॥ १ ॥

इस प्रकार देवता के प्रार्थना करने पर भगवान् बोलेः—

सुविजानो भवं होति, अविजानो पराभवो ।
धम्मकामो भवं होति धम्मदेस्सि पराभवो ॥ २ ॥

(हमारे उपदेश किये धर्म को) अच्छी तरह से जाननेवाले की (दोनों लोकों में) वृद्धि होती है और न जाननेवाले का पराभव (विनाश, पतन व गिरावट) । धर्म की कामना करने

कारणों के होने से देव और मनुष्यों का पतन या पराभव (विनाश) होता है। इस प्रकार आपस में सोचकर एक देवता भगवान् बुद्ध के पास आया। उसका प्रश्न तथा भगवान् ने जो उत्तर दिया उसी को 'पराभव-सूत्र' कहते हैं।

वाले की वृद्धि और उससे द्वेष करने वाले का पराभव (विनाश) होता है ॥ २ ॥

असन्तस्स पिया होन्ति, सन्ते न कुरुते पियं ।
असतं धम्मं रोचेति, तं पराभवतो मुखं ॥ ३ ॥

दुष्टों से प्रेम, सज्जनों से द्वेष तथा दुष्टों के आचरण में रुचि पराभव का मुख्य कारण है ॥ ३ ॥

निद्दासीली सभासीली, अनुट्ठाता च यो नरो ।
अलसो कोध पञ्ञाणो, तं पराभवतो मुखं ॥ ४ ॥

जो अधिक सोनेवाला, बुरी संगत में बैठनेवाला, उत्साह-रहित, आलसी और क्रोधी है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ४ ॥

यो मातरं पितरं वा, जिण्णकं गत योब्बनं ।
पहु सन्तो न भरति, तं पराभवतो मुखं ॥ ५ ॥

जो मनुष्य सामर्थ्य होने पर भी अपने वृद्ध और दुर्बल माता-पिता का भरण पोषण नहीं करता, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ५ ॥

यो समणं ब्राह्मणं वा, अञ्ञं वापि वणिब्बकं ।
मुसावादेन वञ्चेति, तं पराभवतो मुखं ॥ ६ ॥

(देने की सामर्थ्य होने पर भी) जो श्रमण-ब्राह्मण या अन्य किसी याचक को झूठ बोलकर टालता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ६ ॥

पहूतवित्तो पुरिसो, सहिरञ्ञो सभोजनो ।
एको भुञ्जति सादूनि, तं पराभवतो मुखं ॥ ७ ॥

बहुत धन, सुवर्ण और उत्तम भोजन के पदार्थ होते हुए भी

जो पुरुष अकेला स्वाद की वस्तुओं का भोग करता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ७ ॥

जातित्थद्धो धनत्थद्धो, गोत्तत्थद्धो च यो नरो ।
सं ञातिं अतिमञ्ञेति, तं पराभवतो मुखं ॥ ८ ॥

जो मनुष्य अपने जाति, धन और गोत्र के अत्यन्त अहंकार से अपने दूसरे भाई का अपमान करता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ८ ॥

इत्थिधुत्तो सुराधुत्तो, अक्खधुत्ता च यो नरो ।
लद्धं लद्धं विनासेति, तं पराभवतो मुखं ॥ ६ ॥

जो मनुष्य स्त्री लंपट और मद्य (भाँग, गांजा, अफीम इत्यादि नशों के) पीने में तथा जुए इत्यादि के खेल में निरत रहता है, और जो अपनी कमाई को व्यर्थ नष्ट करता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ६ ॥

सेहि दारेहि असन्तुट्ठो, वेसियासु पदिस्सति ।
दिस्सति परदारेसु, तं पराभवतो मुखं ॥ १० ॥

जो पुरुष अपनी स्त्री से सन्तोष न करके वेश्याओं में रमण करता है तथा पराई स्त्रियों को दूषित करता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ १० ॥

अतीत योब्बनो पोसो, आनेति तिम्बरुत्थनिं ।
तस्सा इस्सा न सुपति, तं पराभवतो मुखं ॥ ११ ॥

जो मनुष्य गत यौवन अर्थात् वृद्धावस्था में छोटी आयु-वाली कन्या से विवाह करता है, तो वह उसकी ईर्ष्या (जलन) से सुख की नींद नहीं सो सकता, यह भी उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ ११ ॥

इत्थिसोण्डिं विकिरणिं, पुरिसं वापि तादिसं ।
इस्सरियस्मिं ठापेति, तं पराभवतो मुखं ॥ १२ ॥

जो असावधान और बिगड़ैल स्त्री या पुरुष को (सम्पत्ति का) मालिक बनाता है, वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ १२ ॥

अप्पभोगो महातण्हो, खत्तिये जायते कुले ।
सो च रज्जं पत्थयति, तं पराभवतो मुखं ॥ १३ ॥

जो क्षत्रिय (आदि उच्च) कुल में उत्पन्न होने के कारण, धनहीन होने पर भी ग़रीबी से बसर नहीं करता, बल्कि बहुत लालच और राज्य पाने की इच्छा करता है, तो वह उसके पराभव का मुख्य कारण है ॥ १३ ॥

एते पराभवे लोके, पण्डितो समवेक्खिय ।
अरियो दस्सन सम्पन्नो, स लोकं भजते सिवं ॥१४॥

जो विद्वान् इन पराभवों (विनाश मूलक धर्म) को भली-भाँति जानकर आर्य-दर्शन (श्रेष्ठ-तत्व-ज्ञान) से सम्पन्न होते हैं, वे परम कल्याण शान्ति लोक को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

पराभव सुत्तं निट्ठितं ।

रतन सुत्तं

(रत्न सूत्र)

भूमिका

पणिधानतो पट्ठाय तथागतस्स दस पारमियो, दस उपपारमियो, दस परमत्थ पारमियोति समतिंसपारमियो, पंचमहापरिच्चागे, लोकत्थचरियं, ञातत्थचरियं, बुद्धत्थ चरियंति तिस्सो चरियायो, पच्छिमभावे गब्भोक्कंतिं, जातिं, अभिनिक्खमनं, पधान चरियं, बोधिपल्लंके मार विजयं, सब्बञ्ञुता ञानपटिवेधं, धम्मचक्क पवत्तनं नव-लोकोत्तर धम्मेति सब्बेपिमे बुद्धगुणे आवज्जेत्वा वेसालियातिसु पाकारंतरेसु तियामरत्तिं परित्तं करोन्तो आयस्मा आनंदत्थेरोविय कारुञ्ञचित्तं उपट्ठपेत्वा—

> कोटि सत सहस्सेसु चक्कवालेसु देवता ।
> यस्साणं पटिग्गण्हन्ति, यं ; पुरे ॥ १ ॥
> रोगा मनुस्स-दुब्भिक्ख-संभूतं तिविधंभयं ।
> खिप्पमंतरधापेसि, परित्तं तं भणामहे ॥ २ ॥

भगवान् गौतम बुद्ध ने अपने सुमेध तापस के जन्म में अमरावती नगर में भगवान् दीपंकर बुद्ध के चरणों में गिरकर बुद्धत्व-लाभ के लिए जो प्रार्थना की थी, उस प्रार्थना से आरंभ करके दस पारमिता (दान,शील, नैष्कर्म्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षांति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री और उपेक्षा), दस-उपपारमिता (अधम भाव से पूर्ण होने

पर उपपारमिता), दस-परमार्थ-पारमिता (उक्त दस-पारमिता उत्तम रूप से पूर्ण होने पर परमार्थ पारमिता हैं), ये तीस पारमिता, पंच-महादान, जगत का हिताचरण, अपनी ज्ञाति वालों का हिताचरण, बुद्ध होने के लिए सदाचरण, ये तीन प्रकार के आचरण शेष जन्म (अर्थात् जिस जन्म में बुद्ध हुए थे, उस जन्म में) माता के गर्भ में प्रवेश, जन्म, संसार-त्याग, कठोर तपस्या, बोधिवृक्ष के नीचे मार-विजय, सर्वज्ञता ज्ञान लाभ, धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन और नव लोकोत्तर धर्म प्रचार इत्यादि सब प्रकार के भगवान् तथागत बुद्ध के गुणों का स्मरण करके, वैशाली नगर के तीनों प्राचीरों में रात्रि-भर परित्राण (रक्षा मंत्र, रत्न-सूत्र) का पाठ करने वाले आयुष्मान् आनंद स्थविर की नाईं करुणा-पूर्ण चित्त से हम लोग भी उस रत्न-सूत्र (परित्राण) का पाठ करते हैं।

जिसके आदेश का सौ सहस्र कोटि चक्रवाल (भूमंडल) वासी देवता लोग प्रतिपालन करते हैं तथा जिसके प्रभाव से वैशाली नगर में रोग, अमनुष्यकृत उपद्रव और दुर्भिक्ष से उत्पन्न होनेवाले तीन तरह के दुःख और भय शीघ्र दूर हो गये ॥१'२॥

सूत्र का आरम्भ

यानीध भूतानि समागतानि,
भुम्मानि वा यानिव अंतलिक्खे।
सब्बे'व भूता सुमना भवन्तु,
अथोपि सक्कच्च सुणंतु भासितं ॥ १ ॥

पृथिवी पर रहने वाले और आकाश में रहने वाले जो सब देव यहाँ आये हैं, वे प्रसन्न चित्त हो, मेरे भाषित को सुनें॥१॥

तस्मा हि भूता निसामेथ सब्बे,
मेत्तं करोथ मानुसिया पजाय।
दिवा च रत्तो च हरंति ये बलिं,
तस्मा हि ने रक्खथ अप्पमत्ता ॥ २ ॥

(त्रिरत्न के गुण श्रवण से उच्च गुणों का विकास होता है) इसलिये तुम सब लोग मन लगा कर सुनो और मनुष्यों से मैत्री रक्खो। लोग दिन रात तुम्हारी भेंट-पूजा करते हैं, इसलिए तुम लोग अप्रमत्त भाव से उन लोगों की रक्षा करो ॥२॥

यं किंचि वित्तं इध वा हुरं वा,
सग्गेसु वा यं रतनं पणीतं।
न नो समं अत्थि तथागतेन,
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ३ ॥

इस लोक में या परलोक में जो कुछ वित्त (धन) है, अथवा स्वर्ग लोक में जो कुछ उत्तम रत्न हैं, उनमें से कोई भी तथागत (बुद्ध) के समान नहीं है। बुद्ध में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥३॥

खयं विरागं अमतं पणीतं,
यदज्झगा सक्यमुनी समाहितो,
न तेन धम्मेन सम'त्थि किंचि।
इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ४ ॥

समाहित-चित्त शाक्य-मुनि ने जिस राग-द्वेष-मोह का क्षय

करके विराग और उत्तम अमृत रूप निर्वाण धर्म को जाना है, उस धर्म के समान कुछ भी नहीं है, धर्म में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ।।४।।

यं बुद्धसेट्ठो परिवण्णयी सुचि,
समाधि मानन्तरिकञ्ञमाहु ।
समाधिना तेन समो न विज्जति,
इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं ।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ।। ५ ।।

भगवान् बुद्ध ने जिस पवित्र समाधि की प्रशंसा की है और जिसका फल अनुष्ठान (अभ्यास) के अनन्तर ही मिलता है, उसके समान कोई और दूसरी समाधि नहीं है। यही समाधि-धर्म में श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो।।५।।

ये पुग्गला अट्ठसतंपसत्था
चत्तारि एतानि युगानि होन्ति ।
ते दक्खिणेय्या सुगतस्स सावका,
एतेसु दिन्नानि महाप्फलानि ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ।। ६ ।।

जिन आठ पुद्गलों की बुद्ध ने प्रशंसा की है और जिनके मार्ग और फल के हिसाब से चार जोड़े होते हैं और वे सुगत (बुद्ध) के श्रावक (शिष्य) हैं तथा दक्षिणा (दान) के उपयुक्त पात्र हैं। इन लोगों को दान देने से महाफल लाभ होता है। श्रावक संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ।।६

ये सुप्प युत्ता मनसा दल्हेन,
निक्कामिनो गोतमसासनम्हि ।
ते पत्तिपत्ता अमतं विगह्य,
लद्धा मुधा निब्बुतिं भुञ्जमाना ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ७ ॥

जो आठों पुद्गल निष्काम हैं, गौतम (बुद्ध) के शासन (धर्म) में स्थिर हैं। वे अमृत में गोता लगा कर बिना मूल्य प्राप्त निर्वाण सुख का भोग करते हैं और प्राप्तव्य-प्राप्त (जिसका पाना परम उचित है, उसे पाये हुए) हैं। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥७॥

यथिन्द खीलो पठविं सितो सिया,
चतुब्भि वातेहि असम्प कम्पियो ।
तथूपमं सप्पुरिसं वदामि,
यो अरिय सच्चानि अवेच्च पस्सति ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ८ ॥

जिस प्रकार पृथिवी में दृढ़ रूप से गड़ा हुआ इंद्रखील (नगर के द्वार पर का स्तंभ) चारों ओर की वायु के वेग से नहीं हिलता, उसी प्रकार जिसने चार-आर्य-सत्य को प्रज्ञा-चक्षु के द्वारा देख लिया है, उस सत्पुरुष की मैं इन्द्रखील के साथ तुलना करता हूँ अर्थात् वह भी इन्द्रखील के समान अचल है। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥८॥

(इसके आगे गाथा ६ से ११तक स्रोतापन्न व्यक्ति का उल्लेख किया गया है।)

ये अरियसच्चानि विभावयन्ति,
गम्भीर पञ्ञेन सुदेसितानि।
किञ्चापि ते होन्ति भुसप्पमत्ता,
न ते भवं अट्ठमं आदियन्ति।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ६॥

गम्भीर-प्रज्ञ बुद्ध द्वारा सुन्दर रूप से उपदेश किये हुए चार-आर्य-सत्य को जो स्वयं भलीभाँति जानकर दूसरों के हित के लिए भी प्रकाश करते हैं, वह प्रमत्त होने पर भी आठवें बार संसार में जन्म ग्रहण नहीं करते अर्थात् सात जन्म के भीतर ही मुक्ति पा जाते हैं। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥६॥

सहा वस्स दस्सनसम्पदाय,
तयस्सु धम्मा जहिता भवन्ति।
सक्कायदिट्ठि विचिकिच्छितञ्च,
सीलब्बतं वापि यदत्थि किञ्चि।
चतूहपायेहि च विप्पमुत्तो,
छ चाभिठानानि अभब्बो कातुं।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१०॥

स्रोतापन्न व्यक्ति को दर्शन संपद् (सम्यक्-दृष्टि) लाभ

होने के साथ-साथ जो कुछ थोड़ी सत्काय-दृष्टि, सन्देह और शीलव्रत रहते हैं, वे सब दूर हो जाते हैं। वह चार प्रकार के अपाय (नरकों) से छूट जाते हैं और छः प्रकार के (मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, अर्हत्-हत्या, बुद्ध का रक्तपात, बुद्ध को छोड़कर किसी अन्य की शरण लेना एवं संघ में भेद डालना) महापाप कर्म उसके लिए असम्भव हो जाते हैं। संघ में यहीं श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ १० ॥

किञ्चापि सो कम्मं करोति पापकं,
कायेन वाचा उदचेतसा वा।
अभब्बो सो तस्स पटिच्छादाय,
अभब्बता दिट्ठ पदस्स वुत्ता।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ११ ॥

वह स्रोतापन्न व्यक्ति काय, वाक्य और मन से कोई पाप करके छिपा नहीं सकता। कारण, सम्यक्-दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति के पाप छिपाना असंभव है। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ ११ ॥

वनप्पगुम्बे यथा फुस्सितग्गे,
गिम्हानमासे पठमस्मिं गिम्हे।
तथूपमं धम्मवरं अदेसयि,
निब्बाणगामिं परमं हिताय।
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१२॥

जैसे वन या पुष्प-कुंज में ग्रीष्म-ऋतु के प्रथम मास में वृक्ष और लता आदि की शाखायें फूलों से युक्त जैसे शोभायमान होती हैं, उसी तरह निर्वाण, अष्ट-लोकोत्तर धर्म और सैंतीस बोधि-पाक्षिक-धर्म तथा शील, समाधि एवं प्रज्ञा रूपी पुष्प से सम्पन्न परम शोभायमान धर्म की ओर जाने वालों के हित के लिए भगवान् ने उपदेश किया है। बुद्ध में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ १२ ॥

वरो वरञ्ञू वरदो वराहरो,
अनुत्तरो धम्मवरं अदेसयि।
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१३॥

सर्वश्रेष्ठ महापुरुष वरञ्ञू-सेना-सहित क्लेश-मार और देव पुत्र-मार को जीतकर बिना किसी गुरु के बताए हुए निर्वाण धर्म का साक्षात्कार करके चार-आर्य सत्यों को प्रकट करने वाले, वरद-सब जीवों का श्रेष्ठ निर्वाण-धर्म को देने वाले, वराहरो-अर्हत् गुणों से विभूषित, अनुत्तरो (अलौकिक-पुरुष, भगवान् बुद्ध) ने सर्वश्रेष्ठ धर्म का प्रचार किया है। बुद्ध में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ १३ ॥

'खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं,'
विरत्तचित्ता आयतिके भवस्मिं।
ते खीणबीजा अविरुल्हिछन्दा,
निब्बंति धीरा यथायं पदीपो।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१४॥

अर्हतों (जीवन मुक्तों) का पुराना कर्म सब क्षीण (विनष्ट) हो जाता है और नये कर्मों की उत्पत्ति नहीं होती, पुनर्जन्म में उनकी आसक्ति नहीं है। उन लोगों के पुनर्जन्म का बीज क्षीण (नष्ट) हो गया है और उन लोगों को कोई इच्छा बाकी नहीं है, अतः ये सब धीर लोग उसी भाँति निर्वाण को प्राप्त होते हैं, जैसे यह प्रदीप तेल समाप्त होने पर बुझ जाता है। संघ में यही श्रेष्ठ रत्नत्व है। इस सत्य के प्रभाव से कल्याण हो ॥ १४ ॥

यानीध भूतानि समागतानि,
भूम्मानि वा यानिव अन्तलिक्खे ।
तथागतं देव मनुस्सपूजितं,
बुद्धं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥ १५ ॥

पृथ्वी और आकाश में रहने वाले जो सब प्राणी यहाँ पर इकट्ठे हुए हैं वे और हम सब मिलकर देव और मनुष्यों से पूजित तथागत बुद्ध को नमस्कार करें, जिससे सबका कल्याण हो ॥ १५ ॥

यानीध भूतानि समागतानि,
भुम्मानि वा यानिव अन्तलिक्खे
तथागतं देवमनुस्सपूजितं,
धम्मं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥ १६ ॥

पृथिवी और आकाश में रहने वाले सब प्राणी जो यहां इकट्ठे हुए हैं। वे और हम सब मिलकर देव और मनुष्यों से पूजित तथागत के धर्म को नमस्कार करें जिससे सबका कल्याण हो ॥ १६ ॥

यानीध भूतानि समागतानि,
भुम्मानि वा यानिव अन्तलिक्खे।
तथागतं देवमनुस्स पूजितं,
संघं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥ १७ ॥

पृथिवी और आकाश में रहने वाले सब प्राणी जो यहां इकट्ठे हुए हैं, वे और हम सब लोग देव और मनुष्यों से पूजित तथागत के संघ को नमस्कार करें, जिससे सबका कल्याण हो ॥ १७ ॥

जय मंगल-अट्ठगाथा

बाहुं सहस्स मभिनिम्मित-सावुधन्तं,
गिरिमेखलं उदित-घोर-ससेन-मारं।
दानादि धम्म विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ १ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने सुन्दर सुदृढ़ बने हुए आयुधों को धारण किये हुए सहस्र भुजा वाले और गिरि मेखल नायक हाथी पर चढ़े हुए अत्यन्त घोर सेनाओं के सहित मार (कामदेव) को अपने दानादि धर्म के बल से जीत लिया है, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो अर्थात् तुम लोगों को अभ्युदय और निःश्रेयस लाभ हो ॥१॥

मारातिरेकमभियुज्झित सब्बरत्तिं,
घोरम्पणालवक मक्खमथद्धयक्खं।
खन्ती सुदन्त विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ २ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने, मार (कामदेव) के अलावा समस्त रात संग्राम करनेवाले घोर दुर्द्धर्ष और कठिन हृदय वाले आलवक नामक यक्ष के क्षान्ति (क्षमा) और सुदान्ति (अच्छी तरह से वश में किये मन) के बल से जीत लिया है, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥ २ ॥

नालागिरिं गजवरं अतिमत्तभूतं,
दावग्गि चक्कमसनीव सुदारुणन्तं ।
मेतम्बुसेक विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ ३ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने दावाग्नि-चक्र और विद्युत के समान अति दारुण और अत्यन्त मदमत्त नालागिरि हस्ती को मैत्री-रूपी जल की वर्षा करके जीत लिया है, उन (भगवान्-बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥३॥

उक्खित्त खग्गमतिहत्थ सुदारुणन्तं,
धावन्ति योजनपथंगुलिमालवन्तं ।
इद्धिभि संखत मानो जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ ४ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने, नालागिरि हस्ती से भी अत्यन्त दारुण, जो अपनी तलवार से मनुष्यों की अँगुलियों को काट काटकर माला बनाया करता था, जिसने बुद्ध पर भी आक्रमण करने के लिए तीन योजन अर्थात् १२ कोस तक पीछा किया था उस अंगुलिमाल को भी अपनी अलौकिक और दिव्य ऋद्धि शक्ति का प्रकाश करके जीत लिया (अर्थात् उसे परम धार्मिक बना दिया); उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥४॥

कत्वान कट्ठमुदरं इव गब्भिनिया,
चिञ्चाय दुट्ठवचनं जनकायमज्झे।
सन्तेन सोम विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ ५ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने, गर्भिणी की तरह ऊँचा काठ का नकली पेट बनाकर (बुद्ध को बदनाम करनेवाली) चिन्ता नामक स्त्री के प्रचार किये हुए अपवाद को अपने शान्त और सौम्य बल से जीत लिया है, उन (भगवान बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥ ५ ॥

सच्चं विहायमतिसच्चक वादकेतुं,
वादाभिरोपितमनं अतिअंधभूतं।
पञ्ञापदीपजलितो जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ ६ ॥

जिन मुनीन्द्र बुद्धने, सत्य को छोड़े हुए असत्यवाद का पोषक और हिमायती, वाद-विवाद-परायण, अहंकार से अति अँधे हुए सच्चक नामक परिव्राजक को प्रज्ञा-प्रदीप जलाकर जीत लिया, उन (भगवान-बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥ ६ ॥

नन्दोपनन्दभुजगं विबुधंमहिद्धिं
पुत्तेन थेर भुजगेन दमापयन्तो।
इद्धूपदेस विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥७॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने विविध महाऋद्धि सम्पन्न नन्दो-

पनन्द नामक भुजंग को अपने पुत्र (शिष्य) महामोग्गल्लान स्थविर के द्वारा अपनी ऋद्धि-शक्ति और उपदेश के बल से जीत लिया है, उन (भगवान् बुद्ध) के प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥ ७ ॥

दुग्गाहदिट्ठि भुजगेन सुदट्ठ हत्थं,
ब्रह्मं विसुद्धि जुतिमिद्धि बकाभिधानं ।
ञाणागदेन विधिना जितवा मुनिन्दो,
तं तेजसा भवतु ते जय मंगलानि ॥ ८ ॥

जिन मुनीन्द्र (बुद्ध) ने भयानक मिथ्यादृष्टि रूपी साँप के द्वारा डँसे गये विशुद्ध ज्योति और ऋद्धि-शक्ति सम्पन्न बक नामक ब्रह्मा जी को ज्ञान रूपी औषध देकर जीत लिया है, उनके प्रभाव से तुम लोगों की जय और मंगल हो ॥ ८ ॥

एतापि बुद्ध जयमंगल अट्ठगाथा,
यो वाचको दिने-दिने सरतेमतन्दि ।
हित्वाननेक विविधा निचुपद्दवानि,
मोक्खं सुखं अधिगमेय्य नरो सपञ्ञो ॥९॥

जो कोई पाठक इस बुद्ध की आठ जय-मंगल गाथाओं को निरालस भाव से प्रतिदिन पाठ करेंगे, वे लोग नाना प्रकार के उपद्रवों के विनाश पूर्वक मोक्ष-सुख लाभ करेंगे ।

जयमंगल अट्ठगाथा निट्ठिता ।

विवाहादि संस्कार परिच्छेद

संस्कारों से जीवन सुसंस्कृत होकर ऊँचा होता है, ऐसा सुसभ्य मानव समाज का बहुत प्राचीन काल से विश्वास चला आता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के कुछ न कुछ संस्कार प्रचलित हैं। अतएव, बौद्ध-समाज में भी १० संस्कार होते हैं। यथा— (१) गर्भ-मंगल, (२) नाम करण, (३) अन्नाशन, (४) केस-कप्पन, (५) कण्ण-विज्झन, (६) विद्यारम्भ, (७) विवाह (८) प्रव्रज्या, (९) उपसंपदा और मृतक-सत्कार। इनमें १ से ७ पर्यन्त गृहस्थों के मांगलिक संस्कार हैं। ८-९ (दो) साधुओं के संस्कार और दसवाँ सबके लिए है।

नाम करण, अन्नप्राशन, विद्यारंभ आदि माँगलिक कर्म तथा पर्व-त्योहार के अनुष्ठान एवं श्राद्ध-शान्ति आदि सभी धार्मिक और सामाजिक कार्य त्रिशरण सहित पंचशील ग्रहण, परित्राण पाठ और यथाशक्ति दान के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं।

उपरोक्त संस्कारों की विधि इस प्रकार सम्पन्न होती है—

(१) **गर्भ-मंगल**—यह गर्भ स्थिति के तीन मास पश्चात् अपनी सुविधानुसार किया जाता है। इसमें विद्वान् बौद्ध-भिक्षु, गर्भ-स्थित बालक के कल्याण के लिए उसकी माता को त्रिशरण सहित पंचशील प्रदान करते हैं, परित्राण सूत्रों का पाठ सुनाते हैं और गर्भवती-स्त्री को पथ्य के अनुकूल रहने एवं अधिक तीक्ष्ण

तथा अधिक उष्ण पदार्थों के सेवन न करने और अधिक श्रम के कामों से, जिनसे कि गर्भ-विकृति अथवा गर्भपात का भय होता है, बचने का उपदेश करते हैं। उपदेश में गर्भवती को सद्-भावना और सद्विचार से रहकर बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, तथा संघानुस्मृति करते रहने का आदेश करते हैं। गर्भवती से कहते हैं कि वह अपने मनमें चिंतन करे कि हमारी संतान सुन्दर, सौम्य, यशस्वी, बल वीर्य सम्पन्न, न्यायनिष्ठ, धार्मिक, विद्वान और प्रज्ञावान हो। इस प्रकार आचार्य का उपदेश और उनकी सेवा-सत्कार हो जाने के बाद उस दिन गृहस्थ अपने परिवार और इष्टमित्रों के साथ प्रीतिभोजन करता है। स्त्रियाँ पिष्टक अथवा गुलगुले का भोजन करती हैं और गा-बजाकर आमोद-प्रमोद के साथ इस मांगलिक संस्कार को सम्पन्न करती हैं।

(२) **नाम करण**—यह जन्म के पाँचवे दिन होता है। उस दिन प्रसूता स्नान करती है, और प्रसव-गृह साफ-सुथरा किया जाता है। विद्वान बौद्ध-भिक्षु आते हैं, और प्रसूता एवं उसके उपस्थित कुटुम्बियों को त्रिशरण सहित पंचशील देते और परित्राण सूत्रों का पाठ सुनाते हैं। इसके पश्चात् बच्चे का नामकरण करते हैं। विद्वान बौद्ध-भिक्षु विचार पूर्वक ऐसा नाम रखते हैं जो प्रज्ञा, प्रतिभा, ओज, वीर्य, करुणा, मैत्री, औदार्य आदि सद्गुणों का द्योतक होता है। वे लोग मानव-समाज में ऊंच-नीच के भेद-भाव की सृष्टि करनेवाले शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास आदि प्रत्यय नामों के संग नहीं लगाया करते, और न बच्चे के जीने के मोह से अल्पज्ञों की भांति घसीटू, घुरहू, पनारू, घिनहू इत्यादि तुच्छता और घृणा सूचक नाम रखने की अनुमति ही देते हैं। नामकरण होने के पश्चात् आचार्य प्रसूता को बच्चे के लालन-पालन के सम्बन्ध में समुचित शिक्षा

देते हैं। सेवा-सत्कार पूर्वक आचार्य के विदा हो जाने पर गृहस्थ अपने परिवार और इष्ट-मित्रों के साथ प्रीति-भोजन करते हैं, तथा स्त्रियां संगीत-वाद्य आदि आमोद-प्रमोद के साथ इस मांगलिक संस्कार का आनन्द मनाती हैं।

(३) **अन्नाशन**—यह जन्म के पांचवें महीने में सुविधा के अनुसार किया जाता है। विद्वान बौद्ध-भिक्षु आते हैं, और बच्चा व बच्चे की माता नवीन वस्त्र धारण करके अपने परिवार के सहित त्रिशरण सहित पंचशील ग्रहण करती एवं परित्राण सूत्रों का पाठ सुनती है। आज के दिन खीर से बुद्ध-पूजा होती है और भिक्षु को भी खीर-भोजन कराया जाता है। इसके पश्चात् आचार्य या आचार्य के आदेश से मांगलिक गीत-वाद्य उलुध्वनि, शंखध्वनि आदि के साथ बच्चे का कोई गुरुजन अपनी अवस्थानुसार धातु आदि की नवीन कटोरी में खीर रख कर नवीन चम्मच से "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स" कहते हुए बच्चे को खीर चटाते हैं। आचार्य के विदा होने पर परिवार के सब लोग प्रीति भोजन करते हैं और गा-बजाकर आनन्दोत्सव मनाते हैं। इसी दिन मध्यान्होत्तर-काल में बच्चे को किसी निकटवर्ती बुद्ध-विहार में ले जाकर बुद्ध का दर्शन कराते और धूप-दीप आदि से बुद्ध की पूजा करते हैं।

४ **केस-कप्पन**—बच्चे के गर्भ के बाल उतारने का यह मांगलिक कृत्य अन्नाशन के पश्चात् उसके जन्म से तीन साल के भीतर अपनी सुविधानुसार किया जाता है। यह कृत्य किसी बुद्ध-विहार में अथवा घर में ही होता है। पहले बौद्ध-भिक्षु अच्छे शुद्ध छुरे से बच्चे के दो-चार बाल काट देते हैं, पश्चात् बाल बनानेवाला सावधानी के साथ बच्चे के सर का

मुण्डन करता है। बालों को आटे की लोई में रखकर और उसी लोई से बच्चे का सिर पोंछ लिया जाता है, और फिर उस लोई को किसी मैदान में गाड़ दिया जाता है अथवा किसी नदी में प्रवाह कर दिया जाता है। मुण्डन हो जाने पर बच्चे को स्नान कराके नवीन वस्त्र पहिनाते हैं, और माता या पिता उसे गोद में लेकर त्रिशरण सहित पंचशील ग्रहण करते, परित्राण-पाठ सुनते और कुछ दान करते हैं, तथा भिक्षु की सेवा-सत्कार के बाद प्रीति-भोजन और आनंद-मंगल मनाते हैं। सायंकाल को बुद्ध-मंदिर में धूप-दीप के द्वारा बुद्ध-पूजा करते हैं।

(५) **कर्ण-विज्झन**—बच्चे के कान छेदे जाना भी एक मांगलिक कृत्य है; जो जन्म के पांचवे वर्ष में होता है। यह भी त्रिशरण सहित पंचशील, परित्राण-पाठ और दानादि के द्वारा पूर्व संस्कारों की भांति सम्पन्न किया जाता है। चतुर कान छेदने वाला बच्चे के कान को छेदता है और बाली आदि पिन्हा देता है। केस-कप्पन यदि तीसरे साल होता है, तो कोई-कोई कर्ण-वेध को भी उसी के साथ कर देते हैं और कोई इसे विद्यारम्भ के साथ करते हैं।

(६) **विद्यारम्भ**—जन्म के पांचवे या सातवें वर्ष में बच्चों को विद्यारम्भ कराया जाता है। इसमें बच्चे को मंदिर में ले जाकर पहले बुद्ध-पूजन कराते हैं, फिर उसे त्रिशरण सहित पंचशील दिया जाता है। इसके पश्चात् बौद्ध-भिक्षु पट्टी या स्लेट पर बच्चे के हाथ में खरिया की बत्ती पकड़ा कर अपने हाथ के सहारे उससे "बुद्धं सरणं गच्छामि", "धम्मं सरणं गच्छामि", "संघं सरणं गच्छामि लिखवाते हैं। इस प्रकार विद्यारंभ हो जाने पर गृहस्थ अपने घर आकर पूर्ववत् आनन्द-उत्सव मनाते हैं। इसके पश्चात् बालक अपनी सुविधा-

नुसार किसी विद्यालय में लिखते पढ़ते हैं। कोई-कोई प्राचीन प्रथानुसार सातवें वर्ष में विद्यारम्भ के समय सामणेर-दीक्षा लेकर विहार में ही वास करके साधुओं को भांति ब्रह्मचर्य का पालन करते और विद्याध्ययन करते हैं।

(७) विवाह—विवाह, गृहस्थ जीवन का एक बहुत बड़ा दायित्वपूर्ण बन्धन है। विवाह केवल काम-चरितार्थ के लिये नहीं बल्कि अपना संयमित जीवन बनाने तथा योग्य सन्तान उत्पन्न करने के लिए है।

विवाह की विधि यह है कि पहले बौद्धाचार्य त्रिशरण-सहित पंचशील प्रदान करते हैं। फिर कम से कम मंगलसूत्र, रतनसूत्र, जयमंगल-अट्ठगाथा पढ़ते हैं। इसके बाद नीचे लिखे पति-पत्नी के पारस्परिक कर्तव्यों को समझाते हैं।

पति का कर्तव्य

प्रिय उपासक ! आप सावधान होकर सुनें। भगवान् बुद्ध ने पति द्वारा पत्नी के लिए ये पाँच कर्तव्य बतलाए हैं—

(१) सम्माननाय—आपको अपनी स्त्री का सम्मान करना चाहिए।

(२) अनवमानाय—आपको अपनी पत्नी का अपमान नहीं करना चाहिए।

(३) अनतिचरियाय—आपको व्यभिचार, मादक द्रव्यों का सेवन और जुए के खेल आदि अनाचारों से विरत रहकर पत्नी का विश्वासपात्र होना चाहिए।

(४) इस्सरियवोसग्गेन—आप धन दौलत से अपनी स्त्री को सन्तुष्ट करेंगे।

(५) अलङ्कारानुपादानेन—आप अलंकार-आभूषणादि अपनी स्त्री को देकर प्रसन्न रखेंगे।

पत्नी का कर्तव्य

श्रीमती उपासिका ! आप सावधान होकर सुनें । भगवान् बुद्ध ने पत्नी द्वारा पति के लिए ये पाँच कर्तव्य बतलाए हैं —

(१) सुसंविहिता कम्मन्ता च होती—आपको अपने घर के सब कामों का ठीक प्रबंध करना चाहिए।

(२) सङ्गहित परिजना च—आपको अपने परिवार, परिजन, नौकर-चाकरों को प्रसन्न और वश में रखना चाहिए।

(३) अनतिचारिनी—आप को व्यभिचार आदि अनाचारों से विरत रह कर अपने पति का विश्वासपात्र बनना चाहिए।

(४) सम्भतंअनुरक्खति—आपको अपने पति के धन-दौलत की रक्षा करनी चाहिए।

(५) दक्खा च होति, अनलसा सब्ब किच्चेसु—आपको घर के कामों में दक्ष होना चाहिए और किसी काम में आलस न करना चाहिए।

इसके बाद निम्नलिखित गाथाओं द्वारा आचार्य आशीर्वाद देते हैं:—

भवतु सब्ब मंगलं, रक्खन्तु सब्ब देवता;
सब्ब बुद्धानुभावेन, सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥१॥
सब्ब धम्मानुभावेन, सदा सोत्थि भवन्तु ते;
सब्ब संघानुभावेन, सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥२॥
यंदुन्निमित्तं अवमंगलं च,यो चा मनापो सकुणस्ससद्दो;
पापग्गहोदुस्सुपिनं अकंतं, बुद्धानुभावेन विनासमेन्तु ।
धम्मानुभावेन विनासमेन्तु, संघानुभावेनविनासमेन्तु

आयु आरोग्य सम्पत्ति, सग्ग सम्पत्ति मेव च;
ततो निब्बान सम्पत्ति, इमेना ते समुज्जतु ॥ ५ ॥
सब्ब रोगविनिमुत्तो, सब्ब संताप वज्जितो;
सब्बवेरमतिक्कन्तो, निब्बुतो च तुवं भव ॥ ६ ॥
आकासट्ठा च भूम्मट्ठा, देवानागा महिद्धिका;
तेपि तुह्मेनुरक्खन्तु, आरोग्येन सुखेन च ॥ ७ ॥
इद्धिमन्तो च ये देवा, वसन्ता इध सासने;
तेपि तुह्मेनुरक्खन्तु आरोग्येन सुखेन च ॥ ८ ॥
जयन्तो बोधि या मूले, सक्यानं नन्दिवड्ढनो;
एवमेव जयो होतु, जयस्सु जय मंगले ॥ ९ ॥
सब्बे बुद्धा बलप्पत्ता, पच्चेकानं च यं बलं ।
अरहन्तानं च तेजेन, सदा सोत्थि भवन्तु ते ॥१०॥
इच्छितं पत्थितं तुय्हं खिप्पमेव समिज्झतु ।
सब्बे पूरेन्तु संकप्पा, चन्दो पन्नरसो यथा ॥११॥

सब प्रकार से तुम लोगों का मंगल हो, सब देवतागण तुम लोगों की रक्षा करें । सब बुद्धों के प्रभाव से, धर्मों तथा संघों के प्रभाव से, तुम लोगों का सदा कल्याण होवे ।

जो कुछ दुर्निमित्त, अमंगल, अशकुन पशु-पक्षियों का शब्द, पाप-ग्रह और भयानक दुस्स्वप्न हैं । वे सब भगवान् बुद्ध के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

धर्म के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों और संघ के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

आयु, आरोग्य, सम्पत्ति, स्वर्ग और परम सुख निर्वाण-सम्पत्ति तुम्हें प्राप्त हों ॥ ५ ॥

तुम सब प्रकार के रोग, संताप और वैरों से मुक्त होकर परम सुख और शान्ति लाभ करो ॥ ६ ॥

महादिव्य शक्ति सम्पन्न आकाशवासी एवं भूमिवासी देव-गण और नागगण तुम लोगों का निरुज और सुखी रहने में सहायता करें ॥ ७ ॥

महादिव्य-शक्ति-सम्पन्न देवतागण जो इस शासन में वास करते हैं, वे लोग तुम लोगों को निरुज और सुखी रहने में सहायता करें ॥ ८ ॥

शाक्य लोगों के आनन्द वर्द्धक भगवान् शाक्यसिंह बुद्ध ने जिस प्रकार बोधि-वृक्ष के नीचे जय लाभ किया है, उसी प्रकार तुम लोगों का भी जय मंगल हो ॥ ९ ॥

बुद्ध बल प्राप्त सम्यक् सम्बुद्धों तथा प्रत्येक बुद्धों का जो बल है, एवं अर्हन्त अर्थात् श्रावक बुद्धों का जो तेज है, उनके प्रभाव से तुम लोगों का सदा कल्याण हो ॥ १० ॥

तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएँ तुम्हें जल्दी ही प्राप्त हों। चित्त के सब संकल्प पूर्णमासी के चंद्रमा की तरह पूर्ण हों ॥ ११ ॥

यहां तक बौद्ध शास्त्रानुमोदित विवाहकृत्य संक्षेप में कहा गया। इसके अतिरिक्त देश-भेद के अनुसार विवाह आदि मांग-लिक कार्यों के अवसर पर मकान और मंडप की सजावट, पोशाक की सजावट उत्तमोत्तम व्यंजनों से कुटुम्बियों व इष्ट मित्रों का प्रीति-भोजन, गाना-बजाना, आनन्द-उत्सव इत्यादि लौकिक कृत्य भी करना चाहिए। किन्तु यह स्मरण रहे कि आनन्दोत्सव मनाते समय इतना बेहोश न हो जाना चाहिए

कि मर्यादा का अतिक्रमण हो जाय। जैसे कि रूढ़ि-उपासक और अंध परंपरा के भक्तों के यहां इस अवसर पर गंदी गालियों का गाना, नशों का पीना भांड़-वेश्या का नचाना और आतिशबाजी इत्यादि में धन नष्ट किया जाता है तथा इन सबके द्वारा होनहार बच्चों और युवक-युवतियों पर बुरा प्रभाव डालकर उन्हें चरित्रहीन बनने में प्रोत्साहन दिया जाता है। यह भी स्मरण रहे कि वर बधू का जोड़ा मिलाने में स्वास्थ्य, सदाचार, स्वभाव, गुण, योग्यता एवं उनकी आयु सीमा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। बौद्धों के यहां बाल-विवाह, वृद्ध विवाह एवं अनमेल-विवाह सर्वथा वर्जित और निषिद्ध है।

(८, ६) **प्रव्रज्या और उपसंपदा**—बौद्धों में सदाचार के नियमों के पालन की तारतम्यतानुसार चार श्रेणियां हैं—पंचशीलधारी-उपासक, अष्टशीलधारी-उपासक, दस शीलधारी-सामणेर और दो सौ सत्ताइस शील धारी श्रमण या भिक्षु।

प्रव्रज्या और उपसंपदा दीक्षा, साधुओं के संस्कार हैं। प्रव्रज्या दीक्षाधारी को सामणेर और उपसम्पदा दीक्षाधारी को श्रमण या भिक्षु कहते हैं।

बौद्ध परंपरा के अनुसार उपसंपदा दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व सामणेर होना अनिवार्य होता है। सामणेर दीक्षा जीवन में सभी को एक बार ग्रहण करना चाहिए, चाहे वह अल्पकाल के लिए ही क्यों न हो। उपसंपदा दीक्षा का ग्रहण करना सबके लिए अनिवार्य नहीं होता। सामणेर, प्रव्रज्या-दीक्षा लेने के उपरान्त "चीवर" (साधुओं के वस्त्र) धारण करके विहार में रहते हैं और वहां जीवन के उच्चस्तर में विहार करने का अनुशीलन करते हैं।

प्रव्रज्या और उपसंपदा दीक्षा की विधि यहां नहीं लिखी

गई। इसके लिए विनय पिटक या प्रातिमोक्ष अवलोकन करने का कष्ट करें।

(१०) **अन्तिम कृत्य और मृतक सत्कार**—जब कोई व्यक्ति मरने के सन्निकट होता है तब उस समय बौद्ध भिक्षु आते हैं। मरणासन्न व्यक्ति को वे परित्राण पाठ सुनाते हैं और यथाशक्ति चीवरादि दान कराते हैं। यदि परित्राण पाठ सुनते-सुनते उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो उसके लिए शुभ समझा जाता है।

मृतक को श्मशान ले जाने के पूर्व नहलाते, सुगंधित द्रव्य लगाते और कफन देते हैं तब भिक्षु को बुलाते हैं। भिक्षु आने पर वहां उपस्थित व्यक्तियों को त्रिशरण सहित पंचशील प्रदान करते हैं। निम्नोक्त मंत्रों से कुछ श्वेत वस्त्र दान कराते हैं। इसे मृतक-वस्त्र दान कहते हैं।

दायक (उपासक) के हाथ में एक जल का गड़वा होता है उससे वह किसी थाली इत्यादि पात्र में शनैः शनैः जल गिराता है और भिक्षु मंत्र पढ़ते हैं:—

संसार वट्ट दुक्खतो मोचनात्थाय इमानि पंच सीलानि समादित्वा मम परलोक गतं पितुस्स उद्देस्से इदं वत्थं भिक्खुस्स देम।

इदं में ञातीनं होतु सुखिता होंतु ञातयो।
उन्नमे उदकं वट्टं यथा निन्नं पवत्तति।
एवमेव इतोदिन्नं पेतानं उपकप्पति॥
यथा वारि वहा पुरा परिपूरन्ति सागरं।
एवमेव इतोदिन्नं पेतानं उपकप्पति॥

एत्तावता च अम्हेहि, सम्भतं पुञ्ञं सम्पदं ।
सब्बे देवानुमोदन्तु, सब्ब सम्पत्ति सिद्धिया ।
आकासट्ठा च भू मट्ठा देवानागा महिद्धिका ;
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा चिरंरक्खन्तु सासनं ।
इमेन पुञ्ञ कम्मेन सब्बे सत्ता सुखी होन्तु ।

संसार रूप दुःख-चक्र से छूटने के लिये हम पंचशील ग्रहण पूर्वक अपने परलोक गत पिता (माता, भ्राता, भगिनी इत्यादि जिसके उद्देश्य से दान करना हो उसका यहाँ नाम लेना चाहिए) के उद्देश्य से मृतक-वस्त्र भिक्षु (एक भिक्षु से अधिक होने पर 'भिक्षु-संघ' कहना चाहिए) को दान करते हैं ।

इस दान का फल हमारे ज्ञातियों को प्राप्त हो, और वे सुखी हों ।

जैसे कोई ऊंचे स्थान पर टिका हुआ या मेघ का बरसा हुआ पानी नीचे की ओर गिरता है वैसे ही इस दान का फल भी हमारे पितरों को प्राप्त हो ।

जिस प्रकार जलपूर्ण नदियों का प्रवाह समुद्र को परिपूर्ण करता है उसी प्रकार इस दान का फल भी हमारे पितरों का पूर्ण उपकार करेगा ।

हमारे द्वारा अब तक जो पुण्य-सम्पत्ति संचित हुई है । सब देवगण सर्व सम्पत्ति साधक हमारे उस पुण्य का अनुमोदन करें ।

आकाश और पृथिवी स्थित महाऋद्धि सम्पन्न देवगण और नागगण इस हमारे पुण्य का अनुमोदन करके भगवान् बुद्ध के शासन-धर्म और देशना धर्म की रक्षा करें ।

इस पुण्य कर्म के द्वारा सब प्राणी सुखी हों ।

इस प्रकार दान हो जाने पर मृत व्यक्ति के समीप उपस्थित व्यक्तियों को बौद्धभिक्षु निम्नलिखित मंत्रों द्वारा अनित्य भावना का उपदेश करते हैं:—

अनिच्चावत संखारा उप्पाद वय धम्मिनो ;
उप्पज्जित्वा निरुज्झति तेसं उपसमो सुखो ।

चक्खु लोके दुक्खा सच्चं लाभो अलाभो यसो अयसो निन्नं पसंसा दुक्खं सुखं अनिच्चा अनत्ता विपरिणाम धम्मं । पियरूपं सातरूपं एत्थेसा तण्हा उप्पज्ञामनो उप्पज्जन्ति । एत्था निरुज्झमनो निरुज्झन्ति ॥३॥

इसी प्रकारः—सोत लोके, घानलोके, जिह्वा लोके, काय लोके, रूप लोके, सद्‌लोके, गंधलोके, सारलोके, पोव्वलोके, मनलोके, धम्मलोके, इन ग्यारह आयतनों को आदि में 'चक्षु लोके' की जगह उच्चारण करके उसके साथ शेष सब मंत्र का पाठ करना चाहिए।

समस्त संस्कार (वस्तु मात्र) अनित्य है । उत्पन्न होना और नाश होना उसका स्वभाव है । उत्पाद एवं निरोध निरंतर होता रहता है । इस परिवर्तनशील संस्कार से मुक्त (निर्वाण) होना ही परम सुख है ।

इस लोक में चक्षु-इन्द्रिय, दुःख का कारण या दुःख-सत्य है । लाभ-अलाभ, यश-अयश, निन्दा-प्रशंसा और सुख-दुःख ये सब (अष्ट लोक धर्म) अनित्य, अनात्म और परिणाम धर्म वाले हैं । इससे प्रिय रूप और सात (सुख) रूप तृष्णा मन में उत्पन्न (पुनर्जन्म का कारण) होती हैं । इस तृष्णा का निरोध करने से निर्वाण होता है । बाकी ग्यारहों का भी इसी प्रकार अर्थ है । केवल चक्षु की जगह दूसरे ग्यारह आयतनों के नाम क्रमशः हो जायंगे । यथा श्रोत, घ्राण, जिह्वा,

त्वक्, रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, मन और धर्म (मन के विषय दुःख सुखादि)।

इस अनित्य-देसना के बाद मृतक की अर्थी स्मशान ले जाते हैं। अर्थी के साथ जितने मनुष्य होते हैं, वे सब बड़े सावधान और गम्भीरता के साथ चलते हैं और अनित्य-भावना के मंत्रों का उच्चारण और अर्थों का चिन्तन करते हुए जाते हैं। स्मशान पहुंच कर चिता लगाते हैं और उस पर शव को रखते हैं,शव के सम्मानार्थ यहाँ जो उपस्थित होते हैं, बौद्ध-भिक्षु उन्हें त्रिरत्न सहित पंचशील प्रदान करते हैं तथा अनित्य भावना का उपदेश करते हैं। यदि घर पर मृतक-वस्त्र दान नहीं किया गया है तो यहाँ पर किया जाता है। तत्पश्चात कपूर, अगर, चंदनादि कुछ सुगन्धित वस्तुओं के साथ चिता में आग लगाई जाती है।

महान एवं सुविख्यात पुरुषों की अवशिष्ट अस्थियां सम्मानार्थ सुरक्षित रखी जाती हैं। साधारण जन, जिनमें शव के दाह संस्कार करने का सामर्थ्य नहीं है, शव को भूमि में गाड़ देते हैं।

मरने के सातवें दिन साप्ताहिक क्रिया होती है। इसके अतिरिक्त मासिक, छः मासिक और वार्षिक क्रिया भी की जाती है इन क्रियाओं की विधि यह है कि उपासक बौद्ध भिक्षुओं को भोजन कराते हैं और चीवर आदि परिष्कारों का दान करते हैं तथा भोजन के सब व्यंजनों में से थोड़ा थोड़ा अंश निकाल कर एक पत्तल पर रख, किसी मैदान में पशु-पक्षियों के लिए रख देते हैं। फिर जिस मृत व्यक्ति के उद्देश्य से यह क्रिया की जाती है, उसके लिए इस पुण्य का निम्नोक्त मंत्रों द्वारा उत्सर्ग करते हैं और अनुमोदन एवम् सद्भावना

करते हैं। बौद्ध-भिक्षु मंत्र पढ़ते जाते हैं और दायक या उपासक गडुवे में जल लेकर किसी पात्र में छोड़ता जाता है।

(इस दिन यथाशक्ति असहाय, असमर्थ दुःखी अनाथों को दान किया जाता है तथा कुटुम्ब-भोजन भी होता है।)

उत्सर्ग मन्त्र यह है:—

संसार कान्तारों दुक्खतो मुंचित्वा निब्बाण सच्छि करणत्थाय इमानि पंच सीलानि समादयित्वा मम परलोक गतस्स मातुस्स उद्देस्से एतानि दानवत्थूनि सद्धिं पिंडदानं देम ॥ १ ॥

इदंमे आतीनं होतु सुखिता होन्तु आतयो ॥ २ ॥
(तीन बार)

उन्नमे उदकं वट्टं यथा निन्नं पवत्तति।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति ॥ ३ ॥
(तीन बार)

यथा वारि वहा पुरा परिपूरेन्ति सागरं।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति ॥ ४ ॥
(तीन बार)

संसार रूपी दुर्गम बन के दुःखों से मुक्त होकर निर्वाण साक्षात्कार करने के लिए हमने पंचशील आदि ग्रहणपूर्वक अपने परलोक गत माता के उद्देश्य से (पिता, भ्राता इत्यादि जिसके उद्देश्य से दान करना हो, उसका नाम यहाँ लेना चाहिए) इन दानीय वस्तुओं के साथ भिक्षुओं को हम भोजन दान करते हैं।

इस दान का फल हमारे ज्ञाति को प्राप्त हो और वे सुखो हों। जैसे कोई ऊँचे स्थान पर टिका हुआ या मेघ का बरसा हुआ पानी नीचे की ओर गिरता है, वैसे ही इस दान का फल भी हमारे पितरों का उपकार करेगा।

जिस प्रकार जलपूर्ण नद-नदियों का प्रवाह सागर को परिपूर्ण करता है उसी प्रकार इस दान का फल भी हमारे पितरों का उपकार करेगा।

किसी विशेष दान पुण्यादि सत्कर्म करने के बाद पुण्यानुमोदन और पुण्य वितरण पूर्वक सबके हित और सुख की कामना नीचे लिखी हुई गाथाओं द्वारा करना चाहिए।

पुण्यानुमोदन और सद्भावना

एत्तावता च अम्हेहि, सम्भतं पुञ्ञ सम्पदं ।
सब्बे देवानुमोदन्तु, सब्ब सम्पत्ति सिद्धिया ॥
सब्बे सत्तानुमोदन्तु, सब्ब सम्पत्ति सिद्धिया ।
सब्बे भूतानुमोदन्तु, सब्ब सम्पत्ति सिद्धिया ॥
आकासट्ठा च भूमट्ठा, देवानागा महिद्धिका ।
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा, चिरं रक्खन्तु सासनं ॥
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा, चिरं रक्खन्तु देसनं ।
पुञ्ञं तं अनुमोदित्वा, चिरं रक्खन्तु मं परंति ॥
इमेन पुञ्ञ कम्मेन, मा मे बाल समागमो ।
सतं समागमो होतु, याव निब्बान पत्तिया ॥

इमिना पुञ्ञ कम्मेन, उपज्झाय गुणुत्तरा ।
आचरियो पकारा च, माता पिता पियामम ॥
मित्ता अमित्ता मज्झत्ता, गुणवन्ता नराधिपा ।
ब्रह्मामारा च इन्दा च, लोकपाला च देवता ॥
भवग्गू पादाय अविचि हेट्ठतो हेट्ठन्तरे ।
सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, फुसन्तु निब्बुत्ति सुखं ॥
देवो वस्सतु कालेन, सस्स सम्पत्ति होतु च ।
फीतो भवतु लोको च, राजा भवतु धम्मिको ॥

इसके बाद बौद्धाचार्य निम्नोक्त गाथाओं से अनुमोदन करते और आशीर्वाद देते हैं:—

सो जाति धम्मो च अयं निदस्सितो,
पेता नं पूजा च कता उलारा ।
बलञ्च भिक्खूनं अनुपदिन्नं,
तुम्हेहि पुञ्ञं पसुतं अनप्पकं ।
इच्छितं पत्थितं तुय्हं खिप्पमेव समिज्झतु ।
सब्बे पूरेन्तु संकप्पा चन्दो पन्नरसी यथा ॥
आयु आरोग्य सम्पत्ति, सग्ग सम्पत्तिमेव च ।
ततो निब्बान सम्पत्ति, इमेना ते समुज्जतु ॥

पुण्यानुमोदन और सद्भावना

हमारे द्वारा अब तक जो पुण्य-सम्पत्ति संचित हुई है; सब देवगण, प्राणिगण, और भूतगण, सर्व सम्पत्ति साधक हमारे उस पुण्य का अनुमोदन करें ।

आकाश और पृथिवी स्थित महाऋद्धि सिद्धि संपन्न देवगण और नागगण इस हमारे पुण्य का अनुमोदन करके भगवान् बुद्ध के शासन धर्म की सदा रक्षा करें। हमारी और दूसरे सब प्राणियों की भी रक्षा करें।

इस पुण्य कर्म के प्रभाव से जब तक निर्वाण प्राप्त न हो, तब तक हमें दुष्ट पुरुषों का संग न हो। सत्पुरुषों का ही सत्संग लाभ हो।

हमने जो कुछ पुण्य कर्म किया है उसके प्रभाव से श्रेष्ठ गुण सम्पन्न हमारे उपाध्याय, आचार्य, उपकारी व्यक्ति, माता-पिता, प्रिय बंधु-बांधव, मित्र, शत्रु, मध्यस्थ और गुणवान् व्यक्ति गण, ब्रह्मा, मार (कामदेव) इंद्र, लोकपाल और सब देवगण. भवाग्र से लेकर अवीचि तक के मध्य में जितने भी प्राणी हैं, वे सब सुखी हों और निर्वाण लाभ करें। उचित समय पर मेघ जल बरसावें, धान्य और सम्पतियों से धरणी परिपूर्ण हों, सब प्रकार से जगत् समृद्धशाली हो और राजा लोग धार्मिक हों।

आचार्य द्वारा अनुमोदन एवं आशीर्वाद

इस पुण्य कार्य द्वारा ज्ञाति धर्म का पालन हुआ। परलोक गत पितरों का खूब पूजा सत्कार हुआ. भिक्षुओं की सहायता करना हुआ और आप स्वयं भी पुण्य का संचय किया।

तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएँ तुम्हें जल्दी ही प्राप्त हों। चित्त के सब संकल्प पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह पूर्ण हों।

आयु, आरोग्य-सम्पत्ति तथा स्वर्ग-सम्पत्ति और परम-सुख निर्वाण तुम्हें प्राप्त हो।

मृत व्यक्ति की तृप्ति व सत्कार के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक कुछ दान पुण्यादि सत्कर्म करना 'श्राद्ध' कहलाता है। यों तो जीवितावस्था में सर्वत्र ही एक दूसरे के प्रति प्रेम-व्यवहार प्रदर्शित करते हैं, परन्तु मरने के बाद भी अपने पूज्य, स्वजन, संबंधियों के स्मरण तथा सम्मानार्थ कुछ दान पुण्यादि सत्कर्म करना सभ्य और शिष्ट समाज का कर्तव्य होता है। यही कारण है कि यह मृतक सत्कार और श्राद्ध हर देश व समाज में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।

शिष्टाचार परिच्छेद

भारतीय-बौद्ध-शिष्टाचार के अनुसार अभिवादन या वंदना करने की विधि दो प्रकार की है—अंजलिबद्ध और पंचांग।

अंजलिबद्ध अभिवादन—दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाकर तथा मस्तक नवाकर 'वंदामि भन्ते' इस प्रकार कहते हुए किया जाता है।

पंचांग अभिवादन—दोनों घुटनों को जमीन पर टेक कर और दोनों हाथों के पंजों को आगे की ओर भूमि पर लगाकर तथा उसी पर मस्तक रखकर "ओकास वंदामि भन्ते द्वारत्तयेन कतं सब्बं अपराधं खमतु मे भन्ते" इस प्रकार कहते हुए किया जाता है। (इतना स्मरण रहे कि पंचांग प्रणाम स्वच्छ भूमि या बिछे हुए आसन पर करना चाहिए, जिससे कपड़े धूलि से मैले न हों।

इस प्रकार से बौद्ध उपासक या सद्गृहस्थ लोग बौद्ध-भिक्षु को अभिवादन करते हैं तथा बौद्ध-भिक्षु भी अपने से वय-ज्येष्ठ भिक्षु को किया करते हैं। वय-ज्येष्ठ के विषय में यहां यह स्मरण रखने की बात है कि बौद्ध-भिक्षुओं के भीतर ज्येष्ठ, कनिष्ठ के लिए जाति, कुल और जन्मायु आदि नहीं माना जाता है। बल्कि बौद्ध-भिक्षु होने के समय से ज्येष्ठ कनिष्ठ माना जाता है।

जब संघ अर्थात् कई भिक्षुओं को एक साथ अभिवादन करते हैं, तब अभिवादन मंत्र में कुछ पाठान्तर हो जाता है। अतएव यहाँ दोनों पाठ अर्थ सहित नीचे लिखे जाते हैं:—

भिक्षु-वन्दना

ओकास वंदामि भन्ते, द्वारत्तयेन कतं सब्बं अपराधं खमतु मे भन्ते।

अवकाश दीजिए भन्ते ! मैं आपकी वंदना करता हूँ। काय, वचन और मन द्वारा जो कुछ अपराध हुए हों, भन्ते ! उन्हें क्षमा कीजिए।

संघ-वन्दना

ओकास संघं अहं वंदामि। द्वारत्तयेन कतं सब्बं अपराधं खमतु मे भन्ते संघो।

अवकाश दीजिये, मैं संघ को वंदना करता हूँ। काय, वचन और मन इन त्रिविध द्वारों से जो कुछ अपराध किये हों, भन्ते संघ ! उन्हें क्षमा कीजिए।

अभिवादन या वंदना करनेवाले को भिक्षु या भिक्षु संघ नीचे लिखी गाथा से आशीर्वाद देते हैं:—

अभिवादन सीलस्स, निच्चं वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु, वण्णो सुखं बलं॥

हमेशा वृद्धों की सेवा करनेवालों और प्रणाम करनेवालों की आयु, रूप, सुख और बल इन चारों संपदाओं की वृद्धि होती है।

जयन्तो बोधियामूले सक्यानां नन्दिवड्ढनो।
एवमेव जयो होतु जयस्सु जय मंगले ॥

शाक्यों के आनन्द के बढ़ानेवाले भगवान् बुद्ध ने जिस प्रकार बोधि वृक्ष के नीचे जय लाभ किया था, उसी प्रकार तुम्हारी भी जय हो, जय हो, जय हो।

यह उपर्युक्त विधि तो हुई बौद्ध-भिक्षु या संघ को अभिवादन करने की। परन्तु बौद्ध-उपासक या गृहस्थ लोग आपस में एक दूसरे को 'नमस्कार' कहकर सम्मान करते हैं, तथा माननीय और पूजनीय व्यक्तियों को जो प्रव्रजित नहीं हुए हैं ऐसे वय-वृद्ध, ज्ञान-वृद्ध, माता और पिता आदिकों को अंजलिबद्ध या पंचांग या चरण स्पर्श करके नमस्कार या अभिवादन करते हैं।

पर्व त्योहार परिच्छेद

यद्यपि धार्मिक लोगों को सत्कर्म यथाशक्ति सदैव करना चाहिए। इसके लिए काल का कोई प्रतिबंध नहीं है, तथापि पूर्वाचार्यों ने सर्वसाधारण की सुविधा के लिए कुछ समय की मर्यादा ठहरा दी है। जैसे २४ घंटे दिन-रात में प्रातःकाल और सायंकाल; महीने में चार दिन अमावस्या, पूर्णिमा और दोनों पक्षों की अष्टमियाँ; साल में चार बहुत बड़े पर्व वैशाखी पूर्णिमा, आषाढ़ी पूर्णिमा, आश्विनी पूर्णिमा और माघी पूर्णिमा। इन समयों में त्रिरत्न-पूजा, वंदना, दान, शील और भावना (ध्यान) इत्यादि पुण्य काय विशेष रूप से करना चाहिए।

वैशाखी पूर्णिमा इस दिन संसार के सर्वोपरि पूज्य और शिक्षक, अहिंसा, समता, संयम और शांतिमय लोकोत्तर धर्म के प्रवर्तक, विश्व बंधुत्व के संस्थापक, परम कारुणिक भगवान् सम्यक् संबुद्ध का जन्म, उनको बुद्धत्व लाभ और उनका परिनिर्वाण (मृत्यु) हुआ था। इन्हीं तीन घटनाओं के कारण यह वैशाखी पूर्णिमा बौद्धों में महान् पवित्र पर्व समझी जाती है।

आषाढ़ी पूर्णिमा—इस दिन तुषित नामक देवलोक से श्वेतकेतु बोधिसत्त्व ने गौतम बोधिसत्त्व के रूप से महामाया

के गर्भ में प्रवेश किया था। इसी दिन बुद्ध ने महाभिनिष्क्रमण अर्थात् राजपाट, स्त्री और पुत्र आदि सर्वस्व त्याग किया था। बुद्धत्व प्राप्त करने के दो महीने बाद वाराणसी में जाकर ऋषि-पत्तन मृगदाव में (जिसका वर्तमान नाम सारनाथ है) पहले पहल पंचवर्गीय अपने शिष्यों को धर्म-उपदेश देकर अपने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया था, और आज के ही दिन बौद्ध भिक्षु लोग वर्षावास अर्थात् बरसात के तीन महीने किसी एक निर्दिष्ट स्थान पर रहकर धर्मानुष्ठान और धर्मोपदेश करने का व्रत लेते हैं।

आश्विनी पूर्णिमा—इस क्वार मास की पूर्णिमासी के दिन भगवान् बुद्ध त्रयत्रिंश देवलोक में अपनी माता महामाया और देवगणों को धर्मोपदेश देकर तीन महीने के बाद सांकाश्य नगर में अवतीर्ण हुए थे। आज के दिन बौद्ध-भिक्षुओं का त्रैमासिक वर्षावास व्रत समाप्त होता है। इसी कारण इसका नाम 'प्रवारणोत्सव' भी है।

माघी पूर्णिमा—इसी दिन भगवान् बुद्ध ने वैशाली सारंदद चैत्य नामक विहार में आज से तीन महीने बाद 'महा-परिनिर्वाण में जाऊँगा' इस प्रकार संकल्प करके आयु-संस्कार का विसर्जन किया था, और अपने परम प्रिय शिष्य आनंद को वह रहस्य समझाकर इसी दिन से अपना अंतिम प्रचार-कार्य आरंभ किया था। इसीलिए यह दिन बौद्ध जगत् में परम पवित्र माना गया।

बौद्ध सद्गृहस्थ लोग इन सब पर्व त्योहारों के दिन विशेष रूप से पुण्यानुष्ठान करते और आनन्दोत्सव मनाते हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय-बौद्ध सद्गृहस्थ नीचे लिखे पर्व भी मनाया करते हैं—

विजयादशमी—आश्विन शुक्ला १०। इस दिन सम्राट अशोक ने कलिंग-विजय करके यह प्रतिज्ञा की थी कि अब हम शस्त्र के द्वारा हिंसात्मक विजय न करके धर्म-प्रचार के द्वारा अहिंसात्मक विजय करेंगे। हिंसा-पूर्ण युद्धों से पीड़ित जनता महान् बौद्ध सम्राट की इस अहिंसात्मक विजय की घोषणा को सुनकर बहुत हर्षित हुई, और इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दिन को सदा स्मरण में रखने के लिए उसने इस दिन को पर्व बना लिया। इस दिन भगवान बुद्ध का पूजन, शील-ग्रहण, धर्म श्रवण और बौद्ध-भिक्षुओं को दान एवं कुटुम्ब में आनंद-उत्सव मनाया जाता है।

दीवाली—यह त्यौहार कार्त्तिक कृष्ण अमावस्या को होता है। यह ऋतुपर्व है। वर्षा समाप्त हो जाने पर घरों की सफाई की जाती है, और इस दिन नये धान के लावा, च्यूरा और बताशों से भगवान् बुद्ध का पूजन करके शील-ग्रहण, धर्म-श्रवण और दान किया जाता है। दिन में यह सब कृत्य होता है, और रात्रि में पर्व की खुशी में बौद्ध सद्गृहस्थ भगवान के मंदिर एवं अपने घरों में दीपावली जलाते हैं। मिथ्यादृष्टि वाले रूढ़िवादी लोग इस त्योहार पर जुए का अनर्थकारी खेल खेलते और उसे धर्म संगत बताते हैं। बौद्ध सद्गृहस्थों के लिए जुए का खेल नितांत वर्जित है।

वसंत—यह त्योहार माघ सुदी ५ को होता है। यह भी ऋतुपर्व है। इस दिन आम्र के बौर, सरसों के पीले फूल एवं केसर पड़ी हुई खीर से भगवान् बुद्ध का पूजन, शील-ग्रहण एवं धर्म श्रवण किया जाता तथा बौद्ध भिक्षुओं को केसरिया

खीर का भोजन और पीले चीवर का दान दिया जाता है। बौद्ध सद्गृहस्थ इस दिन स्वयं भी केसरिया खीर एवं अन्य उत्तमोत्तम पदार्थों का भोजन करते एवं संगीत-वाद्य आदि के द्वारा आनंदोत्सव मनाते हैं।

होली—यह त्योहार फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाता है। यह भी ऋतुपर्व है। इस समय शीत-काल की समाप्ति होती है, अतः जाड़े के कपड़े बदलकर नये वसंत और ग्रीष्म के कपड़े पहने जाते हैं और नये अन्न का भोजन किया जाता है। नवान्न के व्यंजनों से भगवान् बुद्ध का पूजन, शील-ग्रहण धर्म-श्रवण और भिक्षुओं को दान करने के उपरांत कुसुम, पलाश, पारिजात या हल्दी को उबालकर उसके रंग को बौद्ध सद्गृहस्थ अपने इष्ट मित्रों पर छिड़कते हैं। इसके पश्चात् उबटन आदि लगाकर भली भाँति स्नान करके नवीन वस्त्रों को पहनते और परस्पर मिलन-भेटन करते हैं। त्योहार की खुशी में विविध प्रकार के पकवान और मिठाइयाँ बनाई जातीं और आनंदोत्सव मनाया जाता है। रूढ़िवादी लोग इस त्योहार पर बड़ी असभ्यता करते हैं; किंतु बौद्ध सद्गृहस्थों को उनकी तरह गंदी गाली बकना, कीचड़ उछालना, नशा पीना और जगह जगह लकड़ियों को निरर्थक फूंक कर होली जलाना इत्यादि असभ्यता के काम करना उचित नहीं है।

नागपंचमी – यह त्योहार श्रावण शुक्ल ५ को मनाया जाता है। यह भारतवर्ष की प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध सुसभ्य नाग-जाति का त्योहार है। नाग जाति के लोग भगवान् बुद्ध के बड़े भक्त रहे हैं। इस दिन खीर से भगवान् बुद्ध का पूजन किया जाता है। पूजन, शील-ग्रहण, धर्म-श्रवण, दान के उपरांत बौद्ध सद्गृहस्थ स्वयं भी खीर का भोजन विविध व्यंजनों

के साथ करते तथा गाने बजाने के साथ त्योहार का उत्सव मनाते हैं।

यह संक्षेप में पर्व-त्योहारों का उल्लेख किया गया। बौद्ध सद्गृहस्थों को सदा स्मरण रखना चाहिए कि किसी पर्व-त्योहार के मनाते समय आनंदोल्लास में ऐसा प्रमत्त न हो जाना चाहिए कि मर्यादा का अतिक्रमण हो जाय, जैसे कि जुए का खेलना, नशों का पीना, गंदी गालियाँ बकना, कीचड़ उछालना, स्त्रियों के साथ असभ्य व्यवहार करना, दूसरों के मकानों में ढेले फेंकना, इत्यादि। भगवान् बुद्ध ने प्रमाद से सदा बचने के लिये आदेश किया है। यथा—

> अप्पमादो अमत पदं पमादो मच्चुनो पदं
> अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता।
>
> धम्मपदं २, १

अप्रमाद अमृत पद है, प्रमाद मृत्यु का पद है। अप्रमादी मनुष्य अमृत-पद को लाभ करता है, और प्रमादी मृतक के तुल्य है।

तीर्थ-स्मारक परिच्छेद

भगवान् बुद्ध से संबंध रखने वाले स्थानों को बौद्ध-तीर्थ स्थान तथा बौद्ध-धर्म एवं संस्कृति से संबन्ध रखने वाले स्थानों को बौद्ध-स्मारक स्थान माना जाता है। इन्हीं का संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया गया है। इनमें मुख्य पवित्र तीर्थ स्थान चार हैं.—

१. लुंबिनी—जो बुद्ध का जन्म स्थान है।

२. उरुविल्व या बुद्धगया—जहाँ बुद्ध ने बुद्धत्व लाभ किया था।

३. वाराणसी—जहाँ बुद्ध ने पहले पहल अपना धर्म प्रचार किया था।

४. कुशीनगर—जहाँ बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था।

इन चार पवित्र स्थानों में उरुविल्व अर्थात् बुद्धगया अपरिवर्तनीय है, और तीनों स्थान परिवर्तनीय हैं। जितने भी बुद्ध अब तक हुए हैं और आगे होंगे, वे सब इसी बुद्धगया में बुद्धत्व लाभ करते हैं। शेष तीनों स्थान जन्म, मृत्यु और धर्म-चक्र-प्रवर्तन (धर्म प्रचार आरंभ) तात्कालिक परिस्थिति के अनुसार बदल भी सकते हैं, इससे इस बुद्ध गया का महात्म्य बौद्ध जगत् में बहुत बड़ा है। बौद्ध-साहित्य में इसको पृथ्वी का नाभिस्थान भी कहा है। किस कल्प में कितने बुद्ध होंगे, इसकी सूचना भी कल्पारम्भ में यहीं से होती है।

(१) **बुद्धगया**—यह स्थान गया स्टेशन से ७ मील की दूरी पर अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम उरुविल्व था। गया जंकशन इसका स्टेशन है, जो ई० आई० रेलवे के ग्राँड कार्ड लाइन पर है। गया जंकशन स्टेशन पर ठहरने के लिये धर्मशाला भी है। यहाँ से बुद्धगया जाने के लिये पक्की सड़क है और सवारी भी मिलती है। लगभग पच्चीस सौ साल पहले यहाँ पर भगवान् बुद्ध ने पीपल के पेड़ के नीचे बुद्धत्व लाभ किया था। यहाँ एक बहुत सुन्दर विशाल मंदिर है, जिसके भीतर भगवान् बुद्ध विराजमान हैं। यहाँ की प्राचीन वस्तुएँ देखने योग्य हैं।

(२) **राजगृह**—इसे आजकल (राजगिर) कहते हैं। यह पटना जिला में बख्तियारपुर स्टेशन से दक्षिण की ओर तेंतीस मील दूरी पर अवस्थित है। बिहार-बख्तियारपुर लाइट रेलवे का आखिरी स्टेशन राजगिर है। राजगृह से आठ मील पर बड़गावाँ जरासंध की राजधानी है। यहाँ प्राचीन बौद्ध-मन्दिर है। राजगृह में भगवान् बुद्ध ने बहुत समय तक अवस्थान करके गृद्धकूट पर्वत पर बहुत उपदेश प्रदान किये थे।

(३) **वैशाली**—गणतंत्र की यह राजधानी थी। यहीं की अम्बपाली गणिका को भगवान् ने धर्म में दीक्षित किया था। यहीं पर भगवान् ने स्त्रियों को प्रव्रज्या की अनुमति दी थी। वैशाली को आज कल (बसाढ़) कहते हैं। दूर तक इसके खँडहर फैले हुए हैं। पटना से मुजफ्फरपुर तक ओ० टी० आर० से जाकर बसाढ़ के लिये लारी मिलती है।

(४) **नालंदा**—जिला पटना, स्टेशन नालंदा। ई० आई० आर० के बख्तियारपुर स्टेशन से बिहार-बख्तियारपुर लाइट

रेलवे जाती है। यहाँ प्राचीन समय में बौद्धों का प्रसिद्ध बहुत बड़ा विश्वविद्यालय था, जिसके खँडहर अब तक भी मौजूद हैं। यहाँ खोदने पर बहुत-सी पुरानी चीजें मिली हैं। यहाँ पर म्यूजियम भी हैं, जिसमें इस स्थान की खोदी हुई वस्तुएँ संगृहीत हैं।

(५) **सारनाथ**—जिला बनारस, स्टेशन सारनाथ, ओ० टी० आर० लाइन। यह स्थान बनारस कन्टोनमेंट से ६ मील दूरी पर है। यह वह स्थान है जहाँ पहले पहल भगवान् बुद्ध ने अपना धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था। यहाँ अब भी स्तूप तथा पुराने खँडहर मौजूद हैं। यहाँ सरकार की तरफ से एक म्यूजियम कायम कर दिया गया है। यहाँ महाबोधि विद्यालय, मुफ्त दवाखाना और धर्मशाला भी मौजूद है।

(६) **कुशीनगर**—जिला देवरिया, स्टेशन देवरिया, ओ० टी० रेलवे। यह स्थान गोरखपुर स्टेशन से तेंतीस मील और देवरिया से तेईस मील तथा पड़रौना से १४ मील दूर है। यह भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण अर्थात् मृत्यु का स्थान है। यहाँ बौद्ध स्तूप, खँडहर और श्मशान (जहाँ भगवान् बुद्ध का दाह-कर्म हुआ था) मौजूद हैं। यहाँ भगवान् बुद्ध की दो बहुत प्राचीन और विशाल मूर्तियाँ हैं। एक बैठी हुई है और दूसरी १५ फीट लेटी हुई है। यहाँ बौद्धों की धर्मशाला भी है।

(७) **लुंबिनी कानन**—जिला गोरखपुर, स्टेशन नौतनवा, ओ० टी० रेलवे। स्टेशन से आठ मील दूरी पर यह स्थान है। जाने के लिए सड़क और रहने के लिए धर्मशाला तथा रेस्ट हाउस है। यह वह स्थान है जहाँ पर बुद्ध का जन्म

हुआ था। अब भी वहाँ महामाया (बुद्ध की माता) सिद्धार्थकुमार (भगवान् बुद्ध के लड़कपन का नाम) को गोद लिए खड़ी हैं। इस पत्थर की मूर्ति को गाँव के लोग लुंबिनी देवी के नाम से पूजते हैं और जानकार लोग सिद्धार्थकुमार को गोद में लिए हुए बुद्ध माता महामाया की पूजा करते हैं।

कपिल वस्तु—जिला बस्ती. स्टेशन शोहरतगंज, ओ० टी० रेलवे। यहाँ पर बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन की राजधानी थी। यदि भगवान् बुद्ध गृहस्थी में रहते. तो इस अपने पिता की राजधानी के उत्तराधिकारी होते। अब भी यहाँ खँडहर और महाराजा अशोक का स्तंभ मौजूद हैं।

(६) **कौशांबी**—जिला इलाहाबाद, स्टेशन भरवारी ई० आई० आर० से उतर कर कोसम गाँव को जाना चाहिए यह भगवान् बुद्ध के विहार करने और धर्म-प्रचार करने का स्थान है। यहाँ अब भी पुराना खँडहर और महाराज अशोक का स्तंभ वर्तमान है।

(१०) **सांकाश्य**—जिला फर्रुखाबाद, स्टेशन पखना ई० आई० आर०। फर्रुखाबाद जंकशन से पखना स्टेशन जाना चाहिए। यहाँ से सांकाश्य ३ मील की दूरी पर है। शिकोहाबाद से भी मैनपुरी होकर पखना जाया जा सकता है। यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान् बुद्ध स्वर्ग में अपनी माता महामाया और देवताओं को धर्म-उपदेश करके तीन मास के बाद अवतीर्ण हुए थे। यहाँ खोदने पर बहुत-से प्राचीन चिह्न मिले हैं, परन्तु अभी पर्याप्त खोदाई नहीं हुई है।

(११) **साँची-स्तूप**—जिला भूपाल, स्टेशन साँची जी० आई० पी० आर०। यहाँ पर भगवान् के प्रिय शिष्य सारिपुत्र

और मौद्गल्यायन रहते थे। भगवान बुद्ध भी यहाँ धर्म प्रचारार्थ आया करते थे। यहाँ अब भी बौद्ध बिहारों और चैत्यों के भग्नावशेष पहाड़ों पर मौजूद हैं। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन का यह समाधि-स्थान है। इसी जगह से उनकी अस्थि-अवशेष मिले थे। भूपाल रियासत को ओर से यहाँ एक म्यूजियम भी स्थापित हुआ है और सरकारी डाक बंगला भी यहाँ मौजूद है।

(१२) **भेलसा गुहा** – जिला भूपाल, स्टेशन भेलसा, जी० आई० पी० आर०। पुराने बौद्ध गुफाओं के चिन्ह अब भी विद्यमान हैं।

(१३)**ललितपुर गुहा**—जिला भूपाल, स्टेशन ललितपुर जी० आई० पी० आर०। यहाँ भी प्राचीन बौद्ध गुफाओं के चिन्ह अब तक मौजूद हैं।

(१४) **एलोरा**—यह एच० जी० वी० आर० के दौलताबाद स्टेशन से सात मील दूर है। जी० आई० पी० रेलवे के मनमाड़ स्टेशन में एच० जी० वी० आर० का मेल हुआ है। यह निजाम हैदराबाद राज्य के अंतर्गत है। दौलताबाद से एलोरा जाने के लिए सवारियाँ मिलती हैं। यहाँ की खोह विख्यात है। बौद्ध, जैन और हिन्दू गुफाओं के अलग अलग सिलसिले हैं गुफाओं के आगे बड़े-बड़े झरने हैं। बौद्ध गुफाओं में सबसे प्रसिद्ध ये हैं:—

१. धारवार गुफा (सबसे अधिक पुरानी है)
२. विश्वकर्मा की चैत्त गुफा (८५ फीट लम्बी है)
३. दो मंजिली गुफा।
४. तीन तल वाली गुफा।

विश्वकर्मा की सभा में एक बहुत बड़ी बुद्ध की मूर्ति है जिसको वहाँ के लोग 'विश्वकर्मा' कहते हैं।

(१५) **अजन्ता**—यहाँ जाने के लिए रास्ता जी० आई० पी० रेलवे के पंचौरा जमनेर शाखा लाइन के पाहुर स्टेशन से है पाहुर से अजन्ता सात मील दूर है। पाहुर मे एक धर्मशाला है। प्राचीन समय में बौद्ध धर्म का यह एक मुख्य स्थान था। यहाँ भारतीय शिला-तक्षण और चित्रकला का अपर्व निदर्शन हुआ है। यहाँ बहुत-से विहार चैत्य हैं। यहाँ की चित्र-कला की शोभा देखकर चित्त प्रफुल्लित होता है। इस कला की प्रशंसा केवल भारत के ही नहीं, पाश्चात्य देश-देशान्तरों से आने वाले यात्रियों और चित्र-विद्या के पारदर्शियों ने की है। लगभग २६० फीट ऊँची चट्टान की एक दीवार में, आधे गोलाकार की शक्ल में है, एक झरना बह रहा है। यहाँ पहाड़ के भीतर से पत्थर को ककोर कर अति सुन्दर गुफा-मंदिर बनाया गया है। यह मंदिर बौद्धों का है।

(१६) **तक्षशिला**—जिला रावलपिंडी, स्टेशन तक्षशिला जंकशन, एन०डब्लू०आर०। पहले यहाँ एक बौद्ध विश्वविद्यालय था। इस समय भी यहाँ उसके खंडहर, पुराने स्तूप और अशोक का स्तंभ मौजूद है तथा सरकारी म्यूजियम भी यहाँ है।

(१७) **पेशावर**—स्टेशन पेशावर कैंट, एन० डब्लू० आर०। यहाँ पर एक सरकारी म्यूजियम है, जिसमें प्राचीन बुद्ध प्रतिमाओं का बहुत बड़ा संग्रह है। इन भव्य और विशाल प्रतिमाओं को देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हो जाता है और प्राचीन बौद्ध-युग के गौरव का स्मरण आ जाता है।

दान परिच्छेद

बौद्ध शास्त्रों में दान की बड़ी महिमा की गई है और विविध भाँति के दानों का वर्णन है। दान का अर्थ है देना अर्थात् अपनी वस्तु का स्वत्व त्यागकर दूसरे को देना। दान के तीन उपकरण हैं, दान की चेतना (इच्छा), दान की वस्तु और दान का लेने वाला। सब कुछ होते हुए भी यदि दान करने की इच्छा न हो, तो दान नहीं हो सकता; दान की इच्छा होते हुए भी यदि दान देने के लिए कोई वस्तु अपने पास नहीं है तो भी दान नहीं हो सकता और यदि दान करने की इच्छा भी है और दान करने के लिए वस्तु भी है लेकिन यदि कोई दान ग्रहण करने वाला न हो, तो भी दान नहीं हो सकता।

दान कर्म अपने गुरुत्व के अनुसार तीन प्रकार का है— दृष्ट धर्म वेदनीय, परिपक्व वेदनीय और अपरापर्य्य वेदनीय। जो दान जिस अवस्था में किया जाय, वह उसी अवस्था में विपाक (फल) प्रदान करे, जैसे बाल्यावस्था में करने से वह दान अपना विपाक बाल्यावस्था में ही प्रदान करे और युवावस्था में करने से अपना विपाक युवावस्था में प्रदान करे और वृद्धावस्था में करने से अपना विपाक वृद्धावस्था में प्रदान करे दृष्ट धर्म वेदनीय कहलाता है। जो दान कर्म सात दिन के भीतर ही अपना विपाक (फल) प्रदान करे, वह परिपक्व वेदनीय कहलाता है। जो दान कर्म भविष्य में जब अवकाश

पावे तभी अपना विपाक (फल) प्रदान करे, वह अपरापर्य्य वेदनीय कहलाता है।

दान तीन प्रकार के हैं—धर्म दान, अभय दान और अमिष दान अर्थात् वस्तु दान। जिसके धारण करने में मनुष्य अपने दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति कर सकता है उसे 'धर्म' कहते हैं। धर्म का उपदेश करना या प्रचार करना 'धर्म दान' कहलाता है पीड़ित, दुःखित, अनाथों और भयभीतों को शान्ति और आश्रय देना तथा रक्षा करना 'अभय दान' कहलाता है। अन्न, जल, वस्त्र, औषध, पुस्तक, और स्थान आदि वस्तुओं का अधिकारियों को दान करना 'अमिष दान' (वस्तु दान) कहलाता है।

दान देनेवाले तीन प्रकार के होते हैं:— दान दास, दान सहाय और दानपति जो स्वयं अच्छी वस्तुओं का व्यवहार करते हैं, किन्तु दूसरों को देने के लिए सस्ते के लोभ से खराब वस्तुओं का दान देते हैं. ऐसे दाता को 'दान दास' कहते हैं। जो लोग स्वयं अपने लिए जैसी वस्तुओं को व्यवहार में लाते हैं, दूसरों को भी ठीक वैसी ही वस्तुओं का दान करते हैं; ऐसे लोगों को 'दान सहाय' कहते हैं। जो मनुष्य अपने निर्वाह के लिए चाहे जैसी वस्तु व्यवहार में लाते हों, परन्तु दूसरों के लिए उत्तम से उत्तम वस्तु दान करते हैं, ऐसे लोगों को 'दानपति' कहते हैं।

दायक और दानपात्र की योग्यता और अयोग्यता के कारण दान की विशुद्धता चार प्रकार की है:—

(१) दायक द्वारा दान विशुद्धि (२) दान पात्र द्वारा दान विशुद्धि (३) दायक और दान पात्र दोनों द्वारा दान की अशुद्धि, तथा (४) दायक और दान पात्र दोनों द्वारा दान की विशुद्धि।

(१) यदि कोई धार्मिक मनुष्य अपनी सुकृति की कमाई को उदार और प्रसन्न मन से किसी अयोग्य दान पात्र को दान देता है, तो यह दाता द्वारा दान की विशुद्धि हुई अर्थात् यह दान दाता के कारण उत्तम फलदायक होगा।

(२) यदि कोई असच्चरित्रवान् मनुष्य अपने अधर्म की कमाई को संकीर्ण मन और अप्रसन्न चित्त से किसी सुपात्र को दान करता है तो यह दानपात्र द्वारा दान की विशुद्धि हुई अर्थात् यह दान अपने दानपात्र द्वारा दान की विशुद्धि हुई अर्थात् यह दान अपने दानपात्र के कारण उत्तम फल देने-वाला होगा।

(३) यदि कोई असच्चरित्र मनुष्य अधर्म की कमाई को अपने संकीर्ण मन और अप्रसन्न चित्त से किसी कुपात्र को दान करता है, तो वह दान-दाता और गृहीता दोनों के द्वारा दान की अशुद्धि हुई। अर्थात् यह दान दाता और गृहीता दोनों के अयोग्य होने के कारण उत्तम फलदायक न होगा।

(४) यदि कोई धार्मिक व्यक्ति अपनी सुकृति की कमाई को उदारतापूर्वक प्रसन्न चित्त से किसी सुपात्र को दान देता है, तो यह दाता और गृहीता दोनों द्वारा दान की विशुद्धि हुई अर्थात् यह दान दायक और दानपात्र दोनों की योग्यता के कारण अधिक से अधिक परमोत्तम फल प्रदान करेगा।

दान का विस्तृत वर्णन बौद्ध शास्त्रों में पढ़ना चाहिए। यहाँ कुछ नित्य नैमित्तिक मुख्य दानों का उल्लेख किया जाता है:-

१—चतुःप्रत्यय दान—(१) चीवर (बौद्ध साधुओं के पहनने के कपड़े), (२) शयनासन (बिछौना), (३) पिण्ड पात (भोजन), और (४) औषध (बीमारी की अवस्था में औषध)। इन्हीं को चतुःप्रत्यय कहते हैं। बौद्ध सदगृहस्थों को यथाशक्ति यह दान प्रतिदिन करना चाहिए।

२—अष्ट परिष्कार दान - बौद्ध—साधुओं के व्यवहार की आठ वस्तुओं का दान। यथाः—त्रि-चीवर अर्थात् बौद्ध साधुओं के पहनने के तीन कपड़े—(१) अन्तर वासक (कटि वस्त्र, लुङ्गी), (२) उत्तरीय (चादरा), (३) संघाटी (एक में सिली हुई दो चादरें), (४) भिक्षापात्र (भोजन पात्र), (५) छुरा, (६) सुई, (७) कमर बंधनी, (८) परिश्रावण-जल छानने की थैली।

३—काल-दान=पाँच हैं—(१) आये हुए बौद्ध साधुओं का यथोचित सेवा-सत्कार करना। (२) धर्म-प्रचार करने के लिए किसी दूसरे देश में गमन करनेवाले बौद्ध-साधुओं की सहायता करना। (३) रोग से पीड़ित बौद्ध-साधुओं की सेवा-सुश्रूषा करना। (४) दुर्भिक्ष के समय बौद्ध साधुओं की भोजन आदि द्वारा रक्षा करना। (५) फसल के उत्पन्न नये फल और अन्न आदिकों को पहले बौद्ध साधुओं को दान देना।

पात्र भेद से दान के तीन भेद हैं। यथा (१) पुद्गल दान, (२) संघ दान, (३) और उद्देश्य दान।

(१) किसी व्यक्ति विशेष को दान देना पुद्गल दान कहलाता है।

(२) समूह को दान देना संघ दान कहलाता है। बौद्ध शास्त्र के अनुसार कम-से-कम नगर में १० बौद्ध भिक्षुओं का संघ माना जाता है और ग्राम में कम-से-कम ५ (पाँच) का।

(३) जो अब विद्यमान नहीं है जैसे भगवान् बुद्ध या अपने और कोई पूज्य आचार्य, माता-पिता, प्रिय इष्ट कुटुम्ब आदि के उद्देश्य से जो दान किया जाता है, वह उद्देश्य दान कहलाता है।

संघ को दान देने का मंत्र

संसार वट्ट दुक्खतो मोचनोत्थाय ।
इमं भिक्खं सपरिक्खारं भिक्खु संघस्स देम ॥
(तीन बार)

संसार रूप दुःख चक्रसे छूटने के लिए इस भोजन को भिक्षुओं के व्यवहार की आठ वस्तुओं के सहित भिक्षु संघ को हम दान देते हैं।

भिक्षु को दान देने का मंत्र

संसार वट्ट दुक्खतो मोचनोत्थाय ।
इमं भिक्खं सपरिक्खारं भिक्खुस्स दानं देम ॥
(तीन बार)

सामणेर को दान देने का मंत्र

संसार वट्ट दुक्खतो मोचनोत्थाय ।
इमं भिक्खं सपरिक्खारं सामणेरस्स दानं देम ॥
(तीन बार)

यदि अष्ट परिष्कार दान न करना हो, केवल पिंडपात अर्थात् भोजन का ही दान करना हो, तो 'सपरिक्खारं' न कहकर केवल 'इमं भिक्खं भिक्खुस्स देम' कहना चाहिए।

कठिन चीवर दान

इदं कठिन चीवर दुस्सं भिक्खु संघस्स देम, कठिनं अत्थरितुं इदं मे पुञ्ञ आसवक्खया वहं होतु ॥

विहार दान करने का मंत्र

इमं विहारं चातुद्दिसस्स आगतानागतस्स भिक्खु

संघस्स देमि, संघो यथासुखं परिभुञ्जतु । इमं मे पुञ्ञं निब्बान पच्चयो होतु ॥

बुद्ध मूर्ति प्रतिष्ठा का मंत्र

इदं बुद्ध-बिम्बं सब्बेहि देव मनुस्सेहि पूजेतु इमस्मिं विहारे पतिट्ठापेमि इदं मे पुञ्ञं बोधिञाणं पटिलाभाय संवत्ततु ॥

दस प्रकार के पुण्यकर्म

दानं सीलं च भावना पत्ति पत्तानुमोदना ।
वेय्यवच्चा पचायञ्च देसना सुति दिट्ठु जु ॥

दान, शील, भावना, पुण्यदान, पुण्यानुमोदन, शारीरिक परिश्रम द्वारा पुण्य कर्म में सहायता, पूजनीय व्यक्तियों का सम्मान, धर्म का उपदेश, धर्म का श्रवण और सम्यक् दृष्टि ये दस प्रकार के पुण्य कर्म हैं।

संघ को वर्षावास के लिए निमंत्रण

इच्छाम मयं भन्ते, संघं ते मासं उपट्ठातुं ।
अधिवासेतु नो भन्ते, संघो इम ते मासं वस्सा वासन्ति॥

एक भिक्षु के लिए निमंत्रण

इच्छाम मयं भन्ते ते मासं उपट्ठातुं ।
अधिवासेतु नो भन्ते इमं ते मासं वस्सा वासन्ति ॥

दान के बाद भिक्षु लोग इन गाथाओं को पढ़कर आशीर्वाद देते हैं:—

इच्छितं पत्थितं तुम्हं खिप्पमेव समिज्झतु ।
सब्बे पूरेन्तु संकप्पा चन्दो पन्नरसी यथा ॥
आयु आरोग्य सम्पत्ति, सग्ग सम्पत्तिमेव च ।
ततो निब्बान सम्पत्ति, इमेना ते समुज्झतु ॥

तुम्हारी इच्छित और प्रार्थित सब वस्तुएं तुम्हें जल्दी ही प्राप्त हों। चित्त के सब संकल्प पूर्णमासी के चंद्रमा की तरह पूर्ण हों।

आयु, आरोग्य-सम्पत्ति तथा स्वर्ग-सम्पत्ति और परम सुख निर्वाण-सम्पत्ति तुम्हें प्राप्त हों।

उपदेश परिच्छेद

अर्थात्

धम्मपदं से चुने हुए भगवान् बुद्ध के उपदेशः—

धम्मपदं, यमकवग्ग

१--मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया
मनसाचे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
२--ततो' नं दुक्खमन्वेति चक्कं' व वहतो पदं ॥१॥
मनो पुब्बंगमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो' नं सुखमन्वेति छाया' व अनपायिनी ॥२॥

सब प्रकार की बुरी भली प्रवृत्तियों और धारणाओं में मन पूर्वगामी और श्रेष्ठ है एवं शुभाशुभ प्रवृत्तियाँ और धारणायें सब मनके अनुसार प्रकट होती हैं। अर्थात् वे शुद्ध मन के अनुसार शुभ और दूषित मन के अनुसार अशुभ उत्पन्न होती हैं। अतएव दूषित मन के द्वारा यदि मनुष्य कोई बात कहता है या कोई कर्म करता है तो गाड़ी के बैलों के चलने के साथ साथ जैसे पहिया चलता है उसी प्रकार दुःख भी उस कर्ता के पीछे-पीछे चलता है और यदि परिशुद्ध मन से कोई बात कहता या कर्म करता है तो सुख भी उस मनुष्य की छाया या परछाईं की तरह पीछे-पीछे चलता है।

४—अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ ३ ॥

'उसने मुझे गाली दी', 'उसने मुझको मारा', 'उसने मुझे परास्त किया', 'उसने मेरा धन हर लिया', इस प्रकार की चिन्ता जो मनुष्य अपने मन में नहीं रखता, उसकी शत्रुता अपने आप ही मिट जाती है और जो मनुष्य इस प्रकार शत्रु की अवज्ञा की चिन्ता अपने मन में सदा रखते हैं; उसका वैर भाव कभी नहीं मिटता।

५—न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥ ५ ॥

इस जगत में वैर से वैर कभी दूर नहीं होता। वैर मित्र भाव से ही दूर हो सकता है। यही सदा का नियम है।

६—परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे ।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥६॥

अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं करते कि हम सभी को मर कर यहाँ से कूच करना है। परन्तु जब यह बात वे अनुभव कर लेते हैं तब उनके सारे पारस्परिक कलह मिट जाते हैं।

७—बहुँपि चे सहितं भासमानो,
न तक्करो होति नरो पमत्तो ।
गोपो' व गावो गणयं परेसं,
न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥१६॥

धर्म-ग्रन्थों का कितना ही पाठ करें, लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उन धर्म-ग्रन्थों के अनुसार आचरण नहीं करता,

तो दूसरों की गौवें गिनने वाले ग्वालों की तरह वह श्रामण्य (बुद्ध-शिष्यत्व) का भागी नहीं होता।

अप्पमादवग्गो

८—अप्पमादो अमत-पदं-पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता॥ १॥

अप्रमाद अर्थात् आलस्य और विषय भोगों में गर्क न होकर संयमित और सतर्क रहना अमृतपद निर्वाण को देने वाला है और प्रमाद (आलस्य) मृत्यु अर्थात् दुःख चक्र में डालने वाला है। अप्रमादी व्यक्ति उस प्रकार मृत्यु को प्राप्त नहीं होता जिस प्रकार प्रमादी व्यक्ति दुःख और पछतावे के साथ मृत्यु को प्राप्त होता है।

९—पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह असोको सोकिनिं पजं,
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठे धीरो बाले अवेक्खति॥ ८॥

जब विद्वान् पुरुष प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है तब वह शोक रहित हो जैसे कोई पर्वत पर चढ़ नीचे खड़े लोगों को देखे वैसे ही प्रज्ञा रूपी प्रासाद पर चढ़ संसार में पड़ी जनता को शोक से आकुल देखता है।

चित्तवग्गो

१०—फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो' व तेजनं॥ १॥

चित्त क्षणिक है, चपल है, इसे रोक रखना कठिन है और इसका निवारण करना भी दुष्कर है। ऐसे चित्त को मेधावी

पुरुष यत्नपूर्वक सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को।

११--दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबंधना ॥५॥

दूरगामी, अकेले विचरने वाले, निराकार, गुहाशायी इस चित्त का जो सयंम करेंगे, वही मार के बन्धन से मुक्त होंगे।

१२--अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो।
पुञ्ञपापपहीणस्स नत्थि जागरतो भयं ॥ ७ ॥

जिसके चित्त में राग नहीं, जिसका चित्त द्वेष से रहित है। उस पाप पुण्य से ऊपर उठे हुये जागरूक (ज्ञानी) को भय नहीं।

१३--न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे चापि च आतका।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे ॥ ११ ॥

सम्यक् रूप से संयमित, और समाहित-चित्त मनुष्यों का जिस प्रकार हित या उपकार करता है। उस प्रकार हित या उपकार अपने माता-पिता या और कोई ज्ञाति-बन्धु नहीं कर सकते।

पुप्फवग्गो

१३--न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो'व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥ ७ ॥

न तो दूसरों के दोष और न दूसरों के किये तथा न किये की आलोचना करें। अपने स्वयं क्या किया है और क्या नहीं इसी का चिन्तन करें।

१४--चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।

एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥ १२ ॥

चंदन, तगर, कमल या जूही इन सभी की सुगन्धियों से सदाचार की सुगन्ध बढ़कर है।

१५--यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे ।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥ १५ ॥

१६--एवं संकारभूतेसु अन्धभूते पुथुज्जने ।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥ १६ ॥

जिस प्रकार महापथ पर फेंके हुए कूड़े के ढेर में सुन्दर सुगन्धित कमल का फूल पैदा होता है, उसी प्रकार कूड़े के सदृश अन्धे अज्ञ जनों में सम्यक् सम्बुद्ध का शिष्य अपनी प्रज्ञा से प्रकाशमान होता है।

बालवग्गो

१७--पुत्ता म'त्थि धनम्म'त्थि इति बालो विहञ्ञति ।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्ता कुतो धनं ॥३॥

'यह हमारा पुत्र है', 'यह हमारा धन है', ऐसा मूर्ख लोग चिन्ता करते हैं, परन्तु वे यह विचार नहीं करते कि हम अपने आप भी तो नहीं हैं। तब पुत्र और धन अपने कैसे हो सकते हैं।

१८--न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति ।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पटिसेवति ॥ ८ ॥

जिस कर्म को करने से पश्चाताप करना पड़ता है, और जिस कर्म के फल को रो-रो कर भुगतना पड़ता है। ऐसे पाप कर्मों का करना अच्छे पुरुषों को उचित नहीं है।

१९-मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं ।
न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोलसिं ॥ ११ ॥

यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति महीने में एक ही बार कुशा की नोक से उठाकर भोजन करे, परन्तु उसका ऐसा कठिन तप भी, धर्म साक्षात्कार करने वालों के महत्व के सोलहवें हिस्से को भी नहीं पा सकता।

पण्डितवग्गो

२०-ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये ।
सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥ २ ॥

विद्वान् लोग दूसरों के हित के लिये जो उपदेश करते हैं, अनुशासन करते हैं और असभ्यता निवारण करते हैं। इसके कारण वे अच्छे लोगों के प्रिय होते हैं और बुरे लोगों के अप्रिय।

२१-सेलो यथा एक घनो वातेन न समीरति ।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पंडिता ॥ ६ ॥

जैसे अचल पहाड़ प्रचंड वायु के वेग से भी नहीं हिलता है वैसे ही विद्वान् लोग भी निन्दा और स्तुति आदि से कभी विचलित नहीं होते हैं। अर्थात् लाभ-अलाभ, यश-अयश, निन्दा,-स्तुति, सुख,-दुःख, यह आठ प्रकार के लोक (लौकिक) धर्म विद्वान् पुरुषों के चित्त को विचलित नहीं कर सकते।

अरहन्तवग्गो

२२-सन्तं अस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।
सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ॥ ७ ॥

सम्यक् ज्ञान द्वारा विमुक्त हुआ पुरुष, जिसकी रागद्वेषादि अग्नि शान्त हो गई है ऐसे अर्हन्त पुरुषों के मन शान्त होते हैं। वचन शान्त होते हैं और कर्म शान्त होते हैं।

२३--गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥ ६ ॥

ग्राम या निर्जन वन हो, नीचा स्थान हो या ऊँचा तृष्णा रहित अर्हन्त (महात्मा) लोग जहाँ विराजमान होते हैं, वही जगह पुनीत व रमणीय हो जाती है

सहस्सवग्गो

२४--सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथापदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ २ ॥

निरर्थक पद संयुक्त हजारों श्लोकों की अपेक्षा, सत्य-धर्म को दर्शाने वाला एक ही श्लोक श्रेष्ठ है, जिसके सुनने से शान्ति लाभ होता है।

२५--यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥ ४ ॥

यदि किसी महारथी ने लड़ाई में हजारों लाखों शत्रुओं को जीत लिया है, और एक मनुष्य जिसने केवल अपने आपको जीत लिया है। इन दोनों वीरों में आत्म विजयी ही श्रेष्ठ है।

२६--यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने।
एकं च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ८ ॥

यदि कोई यज्ञ करने वाला व्यक्ति बन में जाकर १०० वर्ष

पर्यन्त आहुतियों द्वारा अग्नि देव की सेवा करे और दूसरा कोई व्यक्ति समाहित चित्त महापुरुष की क्षणमात्र भी सेवा करे तो यह १०० वर्ष पर्यन्त आहुति करनेवाले की अपेक्षा सेवा ही अति श्रेष्ठ है।

२७–यं किंचि यिट्ठं च हुतं च लोके,
संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति,
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो ॥ ६ ॥

पुण्य की अभिलाषा से यदि कोई वर्ष भर भी लोक के सभी यज्ञ और हवन करे तो भी ऋजुभूत सन्त को किये एक प्रणाम का चौथा हिस्सा फल भी नहीं प्राप्त होता है।

पापवग्गो

२८–यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति,
सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं,
सुखमो रजो पटिवातं'व खित्तो ॥ १० ॥

जो मूर्ख व्यक्ति, निर्दोष, शुद्ध और पाप-रहित पुरुष को दोष लगाता है या उसकी निन्दा करता है तो वह दोष या निन्दा उलट कर उसी पर पड़ती है। जैसे उल्टी हवा में फेंकी हुई धूल अपने ही ऊपर उलट कर पड़ती है।

२९–गब्भमेके उप्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यन्ति, परिनिब्बन्ति अनासवा ॥११॥

कोई मनुष्य मरकर फिर इसी लोक में जन्म ग्रहण करते हैं

कोई पापात्मा नरक में जाते हैं। अधिक पुण्यात्मा लोग स्वर्ग में गमन करते हैं तथा तृष्णा-रहित महात्मा लोग निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

दण्डवग्गो

३०--सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥ १॥

सब प्राणियों को दण्ड से त्रास होता है और सब को मृत्यु का भय होता है। इससे सब जीवों के सुख-दुःख को अपनी ही तरह समझकर किसी की हिंसा या घात न करे और न उसके लिये प्रेरणा ही करे।

३१--न नग्गचरिया न जटा न पङ्का
नानासका थण्डिलसायिका वा।
रजोवजल्लं उक्कुटिकप्पधानं
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं॥ १३॥

जिस पुरुष की आकाक्षायें समाप्त नहीं हो गईं उस मनुष्य की शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा से, न पंक (लपेटने) से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से और न उकड़ूं बैठने से होती है।

३२--अलङ्कतो चेपि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू॥ १४॥

गृहस्थों के समान वस्त्र भूषणादि से अलंकृत होने पर भी वह यदि द्वेषादि से शान्त, संयमित-इन्द्रिय और नियमित ब्रह्मचारी है तथा सब जीवों के प्रति हिंसा घातादि से निवृत होकर सबको समभाव से देखता है, तो वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है और वही भिक्षु है।

जरावग्गो

३३–कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥ १ ॥

राग-द्वेष रूपी अग्नि से नित्य प्रति जलते रहने पर भी तुमको हर्ष और आनन्द कैसा ? मोह रूपी अंधकार में डूबे रहने पर भी तुम ज्ञान-प्रदीप को क्यों नहीं खोजते हो ?

अत्तवग्गो

३४-अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥ ३ ॥

मनुष्य जैसे दूसरों का अनुशासन करना चाहता है वैसे ही पहले अपने ऊपर करे। आत्मजित होकर के ही दूसरों पर अनुशासन करना चाहिये क्योंकि अपने को दमन करना ही सचमुच सब से अधिक कठिन है।

३५–अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परोसिया।
अत्तना'व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥ ४ ॥

मनुष्य अपने आप ही अपने को बनाने वाला और अपने भले-बुरे का मालिक है दूसरा और कोई भी नहीं है। यदि अपने को भली भाँति वश में कर ले अर्थात् आत्मजित हो जाय तो वह दुर्लभ नाथपद को प्राप्त कर लेता है।

लोकवग्गो

३६–उत्तिट्ठे न'प्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥२॥

उठे, आलस्य न करे, दस प्रकार के सुचरित धर्म का आचरण करे। धर्मात्मा लोग ही इस लोक तथा परलोक में सुख से रहते हैं। दस सुचरित धर्म ये हैं (१) किसी प्राणी की हिंसा न करना, (२) दूसरे की कोई चीज बिना उसकी मरजी के न लेना, (३) मिथ्या कामाचार अर्थात् व्यभिचार, जुए का खेल और नशे का सेवन न करना, (ये कायिक सुचरित हैं) (४) झूठ वचन न बोलना, (५) चुगली न करना, (६) कठोर वचन न बोलना, (७) व्यर्थ वाक्य न बोलना (ये वाचिक सुचरित हैं). (८) लोभ न करना, (९) क्रोध न करना, (१०)मिथ्या दृष्टि का त्याग करना, (ये मानसिक सुचरित हैं) ये दस सुचरित धर्म कहलाते है।

३७–यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिधिय्यति।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥७॥

जो अपने किये पाप-कर्म को पुण्य-कर्म के द्वारा नाश कर देता है, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक में प्रकाशित होता है।

बुद्धवग्गो

३८–किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चानं जीवितं।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥४॥

मनुष्य का जन्म मिलना दुर्लभ है तथा मनुष्य जीवन निर्विघ्न व्यतीत होना भी दुर्लभ है; मिथ्या कल्पनाओं से रहित

सत्-धर्म का श्रवण भी दुर्लभ है और इस संसार में बुद्धों का उत्पन्न होना और भी दुर्लभ है।

३९--सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।

स-चित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान 'सासनं ॥ ५ ॥

किसी प्रकार के पाप-कर्मों का न करना, पुण्य कर्मों का सम्पादन करना, अपने मनको पवित्र करना, यही हैं बुद्धों के अनुशासन अर्थात् उपदेश।

४०--अपि दिब्बेसु कामेसु रति सो नाधिगच्छति।

तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥ ९ ॥

बुद्धानुयायी महात्मा लोग स्वर्ग-सुख को भी तुच्छ समझ कर उसमें नहीं रमते। वे तृष्णा रहित होकर निर्वाण में ही रमते हैं।

४१--बहुँ वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।

आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥ १० ॥

४२--ने'तं खो सरणं खेमं ने'तं सरणमु'त्तमं।

ने'तं सरणमा'गम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ ११ ॥

मनुष्य नाना प्रकार से भयभीत होकर अपने दुःखों की शान्ति के लिये, पर्वत, वन, बाग, वृक्ष, भुइयाँ और चौरा इत्यादि को देवता मानकर भटकते और आश्रय लेते हैं।

किन्तु इन सब जगहों में भटकना और शरण लेना अच्छा नहीं है। यह सब शरण उत्तम नहीं हैं, क्योंकि इन सबकी शरण या आश्रय ग्रहण करने से मनुष्य अपने सब दुःखों से नहीं छूटते।

४३--यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्घञ्च सरणं गतो।

चत्तारि अरियसच्चानि सम्म'प्पञ्ञाय पस्सति ॥ १२

परन्तु जो बुद्धिमान् व्यक्ति बुद्ध और बुद्ध के बताए हुए धर्म तथा उस धर्म पर चलनेवाले संघ की शरण लेते हैं और चार-आर्य-सत्यों को यथार्थ ज्ञान से देखते हैं। यथा—

४४—दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिकम्मं।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥ १३ ॥

दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निरोध तथा दुःख निरोध का उपाय आर्य-अष्टाङ्गिक-मार्ग।

४५—एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ १४ ॥

तो यह शरण और ज्ञान अति श्रेष्ठ और कल्याणकारी हैं। इस शरण और इस ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य गण संसार के सम्पूर्ण दुःखों से छुटकारा पा सकते हैं।

सारांश—इन पाँचों गाथाओं का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने दुःखों से दुखित होकर इधर-उधर मिथ्या विश्वासों में न भटके, न फँसे, क्योंकि इससे उसे यथार्थ शान्ति नहीं प्राप्त होगी वरन वास्तविक शान्ति तो बुद्ध, धर्म, सङ्घ इन तीन रत्नों की शरण लेने से और चारों - आर्य - सत्यों तथा अष्टाङ्गिक-मार्गों के यथार्थ ज्ञान से होगी। चारों-आर्य-सत्य ये हैं :—दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध तथा दुःख निरोध का उपाय। आर्य-अष्टाङ्गिक-मार्ग ये हैं—(१) सम्यक्-दृष्टि (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यक्-वाचा (४) सम्यक्-कर्मान्त (५) सम्यक्-आजीव, (६) सम्यक्-व्यायाम, (७) सम्यक्- स्मृति, (८) सम्यक्-समाधि।

सुखवग्गो

४६–जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं ॥ ५ ॥

जीतने से वैर उत्पन्न होता है और हारने से दुःख प्राप्त होता है किन्तु उपशान्त अर्थात् रागद्वेषादि क्लेश से रहित व्यक्ति जय और पराजय इन दोनों को छोड़कर सदा सुख से विहार करता है।

४७–जिघच्छा परमा रोगा, सङ्खारा परमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बाणं परमं सुखं ॥ ७ ॥

भूख सब से बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़ा दुःख है, यह जान, यथार्थ में निर्वाण को सबसे बड़ा सुख कहा जाता है।

४८–आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं।
विस्सासपरमा ञाती निब्बाणं परमं सुखं ॥ ८ ॥

निरोग होना परम लाभ है। सन्तोष परम धन है। विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है। निर्वाण परम सुख है।

पियवग्गो

४९–मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥२॥

प्रियों का संग बहुत न करे और अप्रियों का संग कभी न करे। क्योंकि प्रियों का अदर्शन दुःखदाई होता है और अप्रियों का दर्शन।

५०—तस्मा पियं न कयिराथ पिया'पायो हि पापको ।
गन्था तेसं विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं ॥ ३ ॥

इसलिये किसी को प्रिय न बनावे। प्रिय से वियोग बुरा होता है। उन्हें कोई बन्धन नहीं है जिन्हें न तो कोई प्रिय है न अप्रिय।

कोधवग्गो

५१--अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ॥ ३॥

क्रोधी को क्षमा के द्वारा जीतना चाहिये, दुष्ट को सज्जनता के द्वारा जीतना चाहिये, कृपण को दान अर्थात् कुछ देकर जीतना चाहिये और मिथ्यावादी को सत्य के द्वारा जीतना चाहिये।

५२--पोराण'मेतं अतुल! ने'तं अज्जतनामि'व ।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं ॥
मितभाणिनम्पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो ७

५३—न चा'हु न च भविस्सति न चे'तरहि विज्जति ।
एकन्तं निन्दितो पोसो, एकन्तं वा पसंसितो ॥ ८ ॥

हे अतुल (उपासक) ! यह पुरानी बात है, आज की नहीं-लोग चुप बैठे हुए की भी निन्दा करते हैं, और बहुत बोलने-वाले की भी, मितभाषी की भी निन्दा करते हैं ; दुनिया में अनिन्दित कोई नहीं है। बिल्कुल ही निन्दित या प्रशंसित पुरुष न था, न आज कल है और न भविष्य में होगा।

मलवग्गो

५४—अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्से'व निद्धमे मलमत्तनो ॥ ५ ॥

जैसे सुनार चाँदी के मैल को धीरे-धीरे निकाल कर साफ़ करता है वैसे ही बुद्धिमान् पुरुष भी अपने अन्तःकरण के राग-द्वेषादि मल को थोड़ा-थोड़ा, धीरे-धीरे निकाल कर साफ और निर्मल बनावें।

५५—अयसा'व मलं समुट्ठितं तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ६

लोहे का मुरचा उससे उत्पन्न होकर उसी को खाता है, वैसे ही सदाचार का उलंघन करने वाले मनुष्य के अपने कर्म उसे दुर्गति को प्राप्त कराते हैं।

५६—हिरीमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीनेन'प्पगब्भेन सुद्धा'जीवेन पस्सता ॥ ११ ॥

लज्जाशील, नित्य पवित्रतान्वेषी, अनाशक्त, दाम्भिकता रहित पवित्र जीवन को सार समझने वालों का जीवन प्रायः कष्ट से ही बीतता है।

५७—नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥१७॥

राग की तरह कोई अग्नि नहीं, द्वेष के माफिक कोई ग्रह नहीं, मोह के समान कोई जाल नहीं और तृष्णा के समान कोई नदी नहीं।

५८--परवज्जा'नुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो ।
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया ॥१६॥

दूसरों का दोष अर्थात् छिद्र देखने वाले और सदा दूसरों की निन्दा करने वाले का पाप बढ़ता जाता है। इसलिये वह अपने पाप क्षय से बहुत दूर होता जाता है।

५६--आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता ॥ २० ॥

निराकार आकाश में जैसे किसी का पद चिह्न नहीं ठहर सकता, वैसे ही केवल बाहरी दिखलावे मात्र के आचरण से बुद्ध शिष्य नहीं हो सकता। साधारण लोग तो सब मोह, तृष्णादि प्रपंचों में निमग्न हैं; किन्तु बुद्ध इन सब प्रपंचों से अलग रहते हैं।

धम्मट्ठवग्गो

६०--न तेन होति धम्मट्ठो येन'त्थं सहसा नये ।
यो च अत्थं अनत्थञ्च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥१॥

६१--असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो'ति पवुच्चति ॥२॥

बिना विचारे यदि कोई न्याय करता हो तो वह न्यायाधीश नहीं। जो पण्डित सच्चे और झूठे दोनों का निर्णय कर विचारपूर्वक धर्म से पक्षपात रहित होकर न्याय करता है वही धर्म की रक्षा करनेवाला सच्चा न्यायाधीश कहा जाता है।

६२--न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो'ति पवुच्चति ॥ ३ ॥

यदि कोई बहुत बोलता है तो वह अपने इस बोलक्कड़पन से पंडित नहीं हो सकता किन्तु जो कल्याणकारी, वैर रहित और निर्भय वक्ता हैं, वे ही पंडित कहलाते हैं।

६३--न तेन थेरो होति येन'स्स पलितं सिरो।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो'ति वुच्चति ॥५॥

६४--यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो'ति पवुच्चति ॥ ६ ॥

यदि किसी के सिर के बाल पक जाँय और उसकी गर्दन झुक जाय तो उससे वह स्थविर अर्थात् वृद्ध नहीं होता है। केवल उसकी आयु मात्र परिपक्व हो गई है किन्तु वह वृथा वृद्ध कहा जाता है।

लेकिन सत्य और धर्म के यथार्थ दर्शी, एवं अहिंसा परायण, संयमशील, जितेन्द्रिय, निर्मल और धैर्यवान् महापुरुष ही स्थविर (वृद्ध) कहलाते हैं।

६५--न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा।
साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो ॥ ७ ॥

६६--यस्स चे'तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
स वन्तदोसो मेधावी साधुरूपो'ति वुच्चति ॥ ८ ॥

ईर्ष्या और मत्सर परायण शठ व्यक्ति केवल मधुर वाणी बोलने और अपने शरीर की सुन्दरता के कारण साधु नहीं हो सकता।

किन्तु जिनकी ईर्ष्या, मत्सर और शठता भली प्रकार विनष्ट और जड़ से उखड़ गई है ऐसे निर्दोष और मेधावी व्यक्ति को ही साधु कहते हैं।

६७--न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं ।
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविस्सति ॥ ९ ॥

६८--यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो ।
समित'त्ता हि पापानं समणो'ति पवुच्चति ॥ १० ॥

जो शील-संयम रूपी व्रत से रहित, मिथ्याभाषी है, वह केवल सिर मुड़ा लेने मात्र से समण नहीं होता । इच्छा और लोभ से भरा हुआ मनुष्य क्या श्रमण होगा ?

जो छोटे-बड़े सब पापों को सर्वथा शमन करने वाला है; वह पाप को शमित करने के कारण समण (श्रमण) कहा जाता है ।

६९--न तेन भिक्खू (सो) होति यावता भिक्खते परे ।
विस्सं धम्मं समादाय भिक्खू होति न तावता ११॥

७०--यो'ध पुञ्ञञ्च पापञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरियवा ।
सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खू'ति वुच्चति ॥१२॥

दूसरों के पास जाकर भिक्षा माँगने मात्र से कोई भिक्षु नहीं होता, जो सारे बुरे कार्यों को ग्रहण करता है, वह भिक्षु नहीं हो सकता ।

जो यहाँ लौकिक पुण्य-पाप को पार करके ब्रह्मचर्य व्रती होकर ज्ञान के साथ लोक में विचरता है, वह भिक्षु कहा जाता है ।

७१--न मोनेन मुनी होति मुल्हरूपो अविद्दसु ।
यो च तुलं'व पग्गय्ह वर'मादाय पण्डितो ॥ १३ ॥

७२--पापानि परिवज्जेति स मुनी तेन सो मुनी ।

यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुचति ॥ १४ ॥

मूढ़ और अज्ञानी व्यक्ति केवल मौन धारण करने से मुनि नहीं होता। किन्तु जो विद्वान् विवेक की तराजू लेकर अच्छे बुरे कर्मों को तौल कर अच्छे को ग्रहण करते हैं और बुरे को त्याग देते हैं, ऐसे व्यक्ति ही मुनि हैं, तथा जो अपने और पराये दोनों के हितों को समान समझते हैं और लोक-परलोक दोनों को मनन करते हैं इस कारण उनको मुनि कहते हैं।

७३--न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति ।

अहिंसा सब्बपाणानं अरियो'ति पवुचति ॥ १५ ॥

जो प्राणी हिंसा करता है, वह आर्य नहीं है। किन्तु जो सभी प्राणियों की हिंसा से रहित है, वही आर्य कहा जाता है।

मग्गवग्गो

७४--मग्गानट्ठङगिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा ।

विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ॥१॥

७५--एसो'व मग्गो नत्थ'ञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया ।

एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥ २ ॥

मार्गों में अष्टांगिक-मार्ग श्रेष्ठ है, सत्यों में चार-आर्य-सत्य श्रेष्ठ हैं धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है। द्विपदों (= मनुष्यों) में चक्षुमान (= ज्ञाननेत्रधारी) बुद्ध श्रेष्ठ हैं, दर्शन (= ज्ञान) की विशुद्धि के लिये यही मार्ग है, दूसरा नहीं; (भिक्षुओं!) तुम इसी पर आरूढ़ होओ यही मार को मूर्छित करनेवाला है।

७६--एतं हि तुम्हें पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।

अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं ॥३॥

७७–तुम्हे हि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥ ४ ॥

इस मार्ग पर आरूढ़ हो तुम दुःखों का अंत कर दोगे। शल्य-समान दुःख का निवारण-स्वरूप निर्वाण को जान मैंने इसका उपदेश किया है।

काम तो तुम्हीं को करना है। तथागत तो केवल मार्ग बतलाने वाले हैं। इस मार्ग पर आरूढ़ होकर ध्यान करनेवाले मार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

७८–सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे'एस मग्गो विसुद्धिया ॥५॥

सभी चीज़े अनित्य हैं,ऐसा जिस समय मनुष्य प्रज्ञा के द्वारा साक्षात् कर लेता है, उस समय उसे दुःखमय संसार से विरक्ति हो जाती है। और यही निर्वाण प्राप्ति का सरल और विशुद्ध मार्ग है।

७९–सब्बे सङ्खारा दुक्खा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥६॥

सभी चीज़े दुःखमय हैं ऐसा जब मनुष्य प्रज्ञा के द्वारा सत्तात् कर लेता है तब उसे दुःखमय संसार से विरक्ति हो जाती है और यही निर्वाण प्राप्ति का सरल और विशुद्ध मार्ग है।

८०–सब्बे धम्मा अनत्ता'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥७॥

सभी स्थितियाँ और पदार्थ अनात्म हैं ऐसा जब योगी प्रज्ञा के द्वारा प्रत्यक्ष करता है तब उसे दुःखमय संसार से विरक्ति हो जाती है। यही मार्ग निर्वाण के लिये सुलभ और विशुद्ध है।

पकिण्णकवग्गो

८१--मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुखं ।
चजे मत्ता सुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुखं ॥ १ ॥

थोड़े सुख के परित्याग से यदि अधिक सुख की प्राप्ति की सम्भावना देखे, तो बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि अधिक सुख के ख्याल से अल्प सुख को त्याग कर दें।

८२--परदुक्खू'पदानेन यो अत्तनो सुख'मिच्छति ।
वेरसंसग्गसंसट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ॥ २ ॥

जो कोई दूसरों को दुःख देकर अपने सुख की इच्छा करते हैं। वे पुरुष वैर संसर्ग दोष से दूषित होकर कभी भी वैरपन से छुटकारा नहीं पा सकते।

निरयवग्गो

८३--सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखू'पमो ।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥३॥

असंयमी दुराचारी हो राष्ट्र का पिंड (= देश का अन्न) खाने से अग्नि-शिखा के समान तप्त लोहे का गोला खाना उत्तम है।

८४--अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।
कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्वा ना'नुतप्पति ॥ ६ ॥

दुष्कृत (= पाप) का न करना श्रेष्ठ है, दुष्कृत करनेवाला पीछे अनुताप करता है। सुकृत का करना श्रेष्ठ है, जिसको करके (मनुष्य) अनुताप नहीं करता।

नागवग्गो

८५--अहं नागो'व सङ्गामे चापतो पतितं सरं ।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुजनो ।। १ ।।

युद्ध क्षेत्र में, धनुष से छूटे तीक्ष्ण तीरों को जिस प्रकार हाथीगण धैर्यपूर्वक सहन कर लेते हैं, वैसे ही हम भी दुष्टों के अपमान सूचक कठोर वाक्यों को सहन करेंगे, क्योंकि इस संसार में शील (सयम) रहित दुष्टजन ही अधिक हैं।

तण्हावग्गो

८६--यथा'पि मूले अनुपद्दवे दळ्हे,
छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति ।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहते,
निब्बत्तति दुक्खमि'दं पुनप्पुनं ।। ५ ।।

जैसे दृढ़मूल के बिल्कुल नष्ट न हो जाने से कटा हुआ वृक्ष फिर भी बढ़ जाता है, वैसे तृष्णा और अनुशय के समूल नष्ट न होने से यह दुःख-चक्र बार-बार प्रवर्तित होता रहता है।

८७--सब्बदानं धम्मदानं जिनाति,
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति ।
सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति,
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ।। २१ ।।

धर्म का दान सारे दानों से बढ़ कर है, धर्म रस सब रसों से प्रबल है, धर्म में रति सब रतियों से उत्तम है, तृष्णा का विनाश सारे दुःखों को जीतने में श्रेष्ठ है।

भिक्खुवग्गो

८८--कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो,
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खू सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥२॥

काया का संयम करना श्रेष्ठ है। वाक्य का संयम करना श्रेष्ठ है। मन का संयम करना श्रेष्ठ है। चक्षु आदि सब इन्द्रियों का संयम करना श्रेष्ठ है। बाहर और अन्दर सब इन्द्रिय द्वारों से संयमित भिक्षुगण सम्पूर्ण दुखों से छूट जाते हैं।

८९--पंच छिन्दे पञ्च जहे पञ्च चु'त्तरि भावये।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्खु ओघतिण्णो'ति वुच्चति ११

पाँच को काटे, पाँच को छोड़े, पाँच की भावना करे और पाँच के ससर्ग को लांघ जाय, वह भिक्षु बाढ़ से उत्तीर्ण कहा जाता है।

अर्थात काम छन्द (विषय वासना) व्यापाद (द्वेष) स्त्यान-मृद्ध (आलस्य) औधत्य-कौकृत्य (चित्त का चाञ्चल्य और पश्चात्ताप) विचिकित्सा (संशय) इन पांचों को जड़ से काटे।

तृष्णा, अहंकार, शाश्वत दृष्टि, उच्छेद दृष्टि और शीलव्रत का दम्भ इन पांचों को छोड़ दे। श्रद्धा, स्मृति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा इन ऊपर उठाने वाले पांचों का अभ्यास करे। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पांचों स्कन्धों की आसक्ति से मुक्त हो; ऐसा अभ्यास करनेवाला भिक्षु संसार रूपी नदी के बाढ़ से उत्तीर्ण हुआ कहा जाता है।

९०--नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञा नत्थि अझायतो ।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च स वे निब्बाणसन्तिके ॥१३॥

प्रज्ञा रहित व्यक्ति का ध्यान नहीं लगता और बिना ध्यान किये प्रज्ञा भी नहीं उदय होती। इसलिये जिनका मन ध्यान और प्रज्ञा दोनों में लगा हुआ है, वे ही निर्वाण के समीप हैं अर्थात् निर्वाण लाभ कर सकते हैं।

ब्राह्मणवग्गो

९१--न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ११

जटा धारण करने से, गर्ग आदि गोत्र में उत्पन्न होने से तथा ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करने से ब्राह्मण नहीं होता। किन्तु जिन्होंने चार-आर्य-सत्यों को सोलह प्रकार से देखा है तथा जो नव लोकोत्तर धर्म से परिज्ञात हैं, वे ही पवित्र हैं, वे ही ब्राह्मण हैं।

९२--न चा'हं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १४ ॥

माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण किसी को मैं ब्राह्मण नहीं कहता। जिसके पास कुछ नहीं है, और जो कुछ नहीं चाहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

९३--वारि पोक्खरपत्ते'व आरग्गेरि'व सासपो ।
यो न लिप्पति कामेसु तम'हं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१६॥

कमल के पत्ते पर जल, और आरे के नोक पर सरसों की भाँति जो भोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

९४—निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च।
योन हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२३॥

चर, अचर (सभी) प्राणियों में प्रहार विरत हो, जो न मारता है, न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

९५—यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३८ ॥

जिसकी गति (= पहुँच) को देवता, गंधर्व और मनुष्य नहीं जानते, जो क्षीणाश्रव (= रागादि दोष रहित) और अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

बुद्ध की घोषणा

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदि कल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसान कल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ ॥

—महावग्ग, विनय पिटक

"भिक्षुओ! सर्व साधारण के हित के लिए, सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरंभ, मध्य और अंत—सभी अवस्थाओं में कल्याण कारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।"

तत्त्वज्ञान-परिच्छेद

बौद्ध-धर्म भारतवर्ष का विशुद्ध सनातन धर्म है, ऐसा बौद्धों का विश्वास है। बुद्ध-परंपरा के अनुसार यद्यपि बुद्धों का आविर्भाव सदैव भारतवर्ष (जंबू द्वीप) में ही होता है तथापि वह समस्त संसार के व्यथित जीवों का पक्षपात-रहित समान रूप से दुःख मोचन करते हैं, क्योंकि उनका धर्म सार्वभौमिक है। इसी कारण बुद्ध, उनका धर्म तथा उस धर्म के अनुसार आदर्श जीवन बनाने और प्रचार करने वाले बुद्ध-शिष्यों का संघ—ये त्रिरत्न कहलाते हैं। जो इस त्रिरत्न की शरण में आते हैं, वे ही बौद्ध कहलाते हैं।

'बुद्ध' होना मनुष्य की सर्वोपरि और पूर्ण अवस्था है। प्रत्येक मनुष्य 'बुद्ध' होने का प्रयत्न कर सकता है, किन्तु 'बुद्ध' होने के लिए अनन्त पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। भगवान् गौतम बुद्ध ने बुद्ध होने के लिए साढ़े पाँच सौ जन्म पूर्व से तैयारी की थी। पृथिवी पर अब तक कितने बुद्ध हुए हैं और कितने आगे होंगे, इसकी गणना नहीं हो सकती। बौद्ध-शास्त्रों में २८ (अट्ठाइस) बुद्धों का वर्णन मिलता है। ये सब बुद्ध लोग अनन्त ज्ञान, अगाध करुणा और अमित विशुद्ध गुणों के आगार होते हैं।

गौतम बुद्ध साढ़े पाँच सौ जन्मों तक बोधिसत्व के रूप में रहकर उन्होंने दान, शील, नैष्कम्य, प्रज्ञा, वीर्य क्षांति, सत्य, अधिष्ठान मैत्री और उपेक्षा इन दसों पारमिताओं को उपलब्ध

कर लिया था। इसके बाद वह तुषित नामक देव लोक में चले गये और गौतम बुद्ध के रूप में आविर्भाव होने तक वहीं बोधिसत्व-रूप में विद्यमान रहे।

आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले उत्तर भारत (बस्ती ज़िले) में कपिलवस्तु नामकी एक राजधानी थी; जहाँ शाक्य वंशीय महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। शाक्य वंश इक्ष्वाकु वंश की शाखा है, जिसे सूर्य-वंश भी कहते हैं। महाराज शुद्धोदन के दो रानियाँ थीं। एक का नाम महामाया, दूसरी का प्रजावती। महामाया के गर्भ से ईस्वी सन् से ६२३ वर्ष पहिले वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को कपिलवस्तु व देवदह के बीच लुंबिनी कानन में बुद्ध का जन्म हुआ। जन्म होने पर उनका नाम 'सिद्धार्थ' रक्खा गया।

बौद्ध-शास्त्रों के अनुसार जिस प्रकार रोगी को रोग-निवृत्ति के लिए एक सच्चे वैद्य की आवश्यकता होती है, वैसे ही पृथ्वी के प्राणियों को अपने दुःख निवारण के लिए सम्यक् सम्बुद्ध की आवश्यकता होती है। मनुष्य-समाज जब राग, द्वेष और मोह के कारण नाना प्रकार के मिथ्या विश्वासों में फँसकर दुःखित और पीड़ित तथा इतना असमर्थ हो जाता है कि बुद्धि के रहते हुए भी उचित-अनुचित को सोच नहीं सकता; आँख रहते हुए भी अपने हित को नहीं देख सकता; हाथ-पैर रहते हुए भी अपने दुःख को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं कर सकता और परंपरागत अंधविश्वासों और रूढ़ियों की धार में बहता रहता है; समाज के कुछ थोड़े-से चतुर अग्रगण्य लोग ईश्वर, धर्म, समाज और राष्ट्रीयता के नाम पर बहुजन के हितों और सुखों का अपहरण करके अनुचित भोग भोगने लगते हैं तथा मनुष्यता की जगह कपट, स्वार्थ और संकीर्णता का साम्राज्य हो जाता है तब परम कारुणिक सम्यक् सम्बुद्ध बुद्ध

परंपरा के अनुसार उत्पन्न होकर करुणा, मैत्री, समता, संयम-मय सम्यक् धर्म का प्रचार कर मनुष्य समाज का दुःख मोचन करते हैं। बौद्धों के विश्वास के अनुसार सम्यक् सम्बुद्ध का गुण अनघ और अपार है। उनकी करुणा और ज्ञान अनन्त है। भगवान् गौतम भी बुद्ध-परंपरा के अनुसार वर्तमान समय के सम्यक् सम्बुद्ध हैं। इसी से इनको तथागत कहते हैं। उन्होंने मनुष्य-जाति के कल्याण के लिये चौरासी हज़ार धर्म-स्कंधों का उपदेश किया है; जिनमें लोक और लोकोत्तर धर्मों का वर्णन है। ग्यारह काम भुवन (जिनमें ४ काम दुर्गति भुवन और ७ काम सुगति भुवन हैं) सोलह रूप ब्रह्म भुवन और चार अरूप ब्रह्म भुवन हैं। इन ३१ भुवनों (काम लोक, रूप ब्रह्मलोक और अरूप ब्रह्मलोक) को त्रिलोक या लोक धातु कहते हैं और निर्वाण को लोकोत्तर या निर्वाण धातु कहते हैं। इसको प्राप्त करने के लिए शील, समाधि और प्रज्ञा का सम्यक् अनुशीलन करना चाहिए। शील, समाधि और प्रज्ञा द्वारा सर्व मलों का निरसन तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है। बुद्ध-शासन की यही तीन शिक्षाएँ हैं। शील से शासन की आदि कल्याणता प्रकाशित होती है। समाधि शासन के मध्य में है और प्रज्ञा अन्त में। शील से दुःख का तदंग प्रहाण होता है। समाधि से विक्खंबन (विष्कम्भन) प्रहाण होता है और प्रज्ञा से समुच्छेद प्रहाण होता है। शील से मनुष्य काम दुर्गति लोकों को अतिक्रमण करके काम सुगति लोकों को प्राप्त होता है। समाधि से सम्पूर्ण काम लोकों को अतिक्रमण करके रूप और अरूप ब्रह्म लोकों को प्राप्त होता है और प्रज्ञा से काम लोक, रूप लोक और अरूप लोक इन सम्पूर्ण लोक धातुओं को अतिक्रमण करके निर्वाण को प्राप्त होता है। निर्वाण बुद्ध धर्म का अन्तिम ध्येय है।

(१) **शील**—शील का अर्थ है—सदाचार या संयम। सदाचार या संयम-रहित मनुष्य चरित्र हीन कहलाता है। मनुष्य-जीवन का उच्चादर्श है संयमशीलता या सच्चरित्रता। इसलिए बौद्ध-धर्म में किसी जाति, कुल या वर्ण में जन्म लेने से ही बड़ाई या छोटाई नहीं होती; बल्कि न्यूनाधिक शील पालन अर्थात् सदाचार के नियमों के पालन करने के तारतम्य से ही होती है जैसे उपासकों के पंचशील, सामणेरों के दसशील और भिक्षुओं के २२७ शील इत्यादि।

इसके अतिरिक्त आठ उपोसथ शील, त्रिरत्न पूजा, वंदना, सेवा, सत्कार और दान ये सब शील (सदाचार के नियमों) के ही अंतर्गत हैं।

(२) **समाधि**—समाधि का अर्थ है—समाधान अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता एक आलम्बन में समान तथा सम्यक् रूप से चित्त और चेतसिक धर्मों की प्रतिष्ठा। इसलिए 'समाधि' उस धर्म को कहते हैं; जिसके प्रभाव से चित्त तथा चेतसिक की एक आलम्बन में बिना किसी विक्षेप के सम्यक् स्थिति हो समाधि से विक्षेप का विध्वंस होता है और चित्त-चेतसिक विप्रकीर्ण न होकर एक आलम्बन में पिण्डरूप से अवस्थित होते हैं। समाधि बहु विध हैं; परन्तु मुख्य भेद दो हैं—लौकिक समाधि और लोकोत्तर समाधि—कामलोक, रूप ब्रह्मलोक और अरूप ब्रह्मलोक इन तीन भूमियों की कुशल चित्त एकाग्रता को लौकिक समाधि कहते हैं। जो एकाग्रता आर्य-मार्ग अर्थात् स्रोत आपत्ति, सकृतागामी, अनागामी और अर्हत मार्ग से संप्रयुक्त होती है, उसे लोकोत्तर समाधि कहते हैं। क्योंकि वह इन लोकों को उत्तीर्ण करके स्थित हैं। इन्हीं दोनों समाधियों को शमथ और विपश्यना भी कहते हैं। शमथ के दो भेद हैं उपचार और अर्पणा।

शमथ का अर्थ है—पाँच नीवरणों अर्थात् विघ्नों का उपशम (पंच नीवरणानं समनट्ठेन समथं)। विघ्नों के शमन से चित्त की एकाग्रता होती है। इसलिए शमथ का अर्थ चित्त की एकाग्रता भी है। (समथोहि चित्तेकग्गता) शमथ का मार्ग लौकिक समाधि का मार्ग है। दूसरा मार्ग विपश्यना का मार्ग है। इसे लोकोत्तर समाधि भी कहते हैं। विघ्नों के अर्थात् अन्तरायों के नाश से ही लौकिक समाधि में चारो ध्यानों का लाभ होता है। यथाः—प्रथम ध्यान में वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता ये पाँच अंग रहते हैं। दूसरे ध्यान में वितर्क और विचार नहीं रहते, केवल प्रीति, सुख और एकाग्रता ये तीन अंग रह जाते हैं। तीसरे ध्यान में प्रीति भी नहीं रह जाती, केवल सुख और एकाग्रता ये दो ही अंग रह जाते हैं। चौथे ध्यान में सुख भी नहीं रहता केवल उपेक्षा-सहित एकाग्रता मात्र रह जाती है।

नीवरण इस प्रकार हैः—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमिद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा। कामच्छन्द 'विषयों में अनुराग' को कहते हैं। जब चित्त नाना विषयों में लालायित होता है तब एक आलम्बन में समाहित नहीं होता। 'व्यापाद' हिंसा को कहते हैं। यह प्रीति का प्रतिपक्ष (विरोधी) धर्म है। 'स्त्यान' चित्त की 'अकर्मण्यता' और 'मिद्ध' आलस्य को कहते हैं। वितर्क स्त्यानमिद्ध का प्रतिपक्ष है। औद्धत्य का अर्थ है—अव्यवस्थित चित्तता और कौकृत्य 'खेद पश्चात्ताप' को कहते हैं। सुख औद्धत्य-कौकृत्य का प्रतिपक्ष है। विचिकित्सा संशय को कहते हैं। विचार विचिकित्सा का प्रतिपक्ष है।

विपश्यना विशेष दर्शन या विशिष्ट ज्ञान का नाम है।

जिस समय इस ज्ञान का उदय होता है कि सब अनित्य, दुःख तथा अनात्म हैं, उस समय विपश्यना का प्रादुर्भाव होता

हैं। बौद्ध शास्त्रों में पुद्गल (जीव) एक चित्त सन्तति (प्रवाह) है। आत्मा नाम का नित्य, ध्रुव और स्वरूप से अविपरिणाम धर्म वाला कोई पदार्थ नहीं है, पंच स्कन्ध मात्र हैं। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान पंच स्कन्ध कहलाते हैं। ये पंच स्कन्ध क्षण-क्षण में उत्पन्नमान और विनश्यमान हैं। पहले इसका ज्ञान होना चाहिये कि न आत्मा है और न आत्मीय। जो अनित्यता, दुःखता और अनात्मता के स्वरूप को देखता है। वह यथार्थ भूतदर्शी है। उसी को विपश्यना की प्राप्ति होती हैं।

विपश्यना प्रज्ञा का मार्ग है। इसे लोकोत्तर समाधि भी कहते हैं। इस मार्ग का अनुगामी विपश्यनायिक कहलाता है। अर्थात् पाँच निवारणों पर विजय प्राप्त कर जो समाधि प्राप्त होती है उसे शमथ समाधि कहते हैं। और अनित्य अनात्म-दुःख पर समाधि प्राप्त कर जो संयोजनों का प्रहाण करना है उसे विपश्यना समाधि कहते हैं। पहले को 'लौकिक' और दूसरे को 'लोकोत्तर' समाधि भी कहते हैं।

प्रज्ञा—प्रज्ञा का अर्थ है—परम ज्ञान। यह चित्त का सर्वोपरि विकास है; जिसके राग-द्वेष और मोह प्रतिबंधक हैं। जब राग, द्वेष और मोह रूप चित्तमल (क्लेश) दूर हो जाते हैं तब प्रज्ञा आलोक का सम्यक् उदय होता है और तब मनुष्य को पिंड-ब्रह्मांड के यथार्थ रहस्य और अनित्य, दुःख, अनात्म होने का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रज्ञा में तृष्णा को जड़-मूल से खोद डालने की शक्ति है। तृष्णा दुःखों का कारण है। इसलिये दुःखों से बचने के लिए तृष्णा का मूलोच्छेदन करना चाहिए। शील का पालन करने से तृष्णा की वृद्धि रुक जाती है। तृष्णा को दुर्बल करने के लिये समाधि का अभ्यास करना चाहिए और तृष्णा का मूलोच्छेदनकरने के लिए प्रज्ञा का लाभ करना आवश्यक है। इसी शील,

समाधि और प्रज्ञा के अनुशीलन को मध्यम मार्ग कहते हैं।

ये मध्यम मार्ग आठ अंग वाले हैं—

शील—(१) सम्यक् वाणी, (२) सम्यक् कर्म, (३) सम्यक् जीविका, (४) सम्यक् व्यायाम।

समाधि—(५) सम्यक् स्मृति, (६) सम्यक् समाधि।

प्रज्ञा—(७) सम्यक् दृष्टि, (८) सम्यक् संकल्प।

शील, समाधि और प्रज्ञा के सम्यक् अनुशीलन में निर्वाण लाभ होता है।

निर्वाण क्या है ?

बौद्ध दर्शन में चार तत्व हैं—चित्त, चेतसिक, रूप और निर्वाण। चित्त के भेद १२१ प्रकार के हैं। ५२ प्रकार के चेतसिक के भेद हैं। रूप के भेद २८ प्रकार के हैं। निर्वाण के भेद दो प्रकार के हैं।

निर्वाण के स्वरूप के भेद का वर्णन इस प्रकार है—क्लेश निर्वाण और स्कंध निर्वाण। रागादि दस क्लेशों के निर्वाण को क्लेश निर्वाण कहते हैं, जो इसी शरीर में प्राप्त होता है, जिसको कि अर्हन्त अवस्था या जीवन-मुक्त अवस्था कहते हैं। स्कंध निर्वाण इस जीवन के बाद प्राप्त होता है। इसको विदेह मुक्ति भी कहते हैं। रागादि दस क्लेश ये हैं:—

(१) राग, (२) द्वेष, (३) मोह, (४) मान, (५) मद, (६) मिथ्यादृष्टि, (७) स्त्यान-मिद्ध, (८) औद्धत्य-कौकृत्य, (९) विचिकित्सा और (१०) निर्लज्जता।

क्लेश निर्वाण की अवस्था का वर्णन भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार किया है:—

फुट्ठस्स लोक धम्मेहि चित्तं यस्स न कम्पति ।
असोकं विरजं खेमं एतं मङ्गलमुत्तमं ॥

—मङ्गल सुत्तं ११

इस अवस्था को प्राप्त हुआ चित्त लाभ-अलाभ, यश-अयश, निन्दा-प्रशंसा, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के प्राप्त होने से विचलित नहीं होता तथा शोक, पाप और भय से रहित परम मङ्गल मय हो जाता है।

सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।
एवं निन्दा पसन्सासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥

—धम्मपदं ६।६

जिस प्रकार अचल पहाड़ हवा से नहीं डोलता उसी प्रकार विद्वान् लोग निन्दा और प्रशंसा से कम्पित नहीं होते।

संतं अस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स उपसंतस्स तादिनो ॥

—धम्मपदं ७।७

सम्यक् ज्ञान के द्वारा जिसने राग और द्वेष के अग्नि को शान्त कर लिया है। ऐसे जीवन मुक्तों के मन, वचन और कर्म शान्त हो जाते हैं।

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थप्पहीणस्स परिलाहो न विज्जति ॥

—धम्मपदं ७।१

उत्पत्ति-विनाश धर्म वाले मार्ग से जो निवृत्त हो गया है। जो शोक रहित और सर्वथा विमुक्त है। जिसकी सभी ग्रंथियाँ क्षीण हो गई हैं उसके लिए फिर दुःख और परिताप कुछ नहीं है।

सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठे व धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतिभूतो सुखपटि सम्वेदी ब्रह्मभूते न अत्ताना विहरति ॥

—दीर्घ निकाय संगीति सुत्तान्त ११४

जो न अपने को संताप पहुँचाता है और न दूसरों को। वह इसी जन्म में शोक रहित सुखी, शीतल, सुखानुभवी ब्रह्मभूत आत्मा के साथ विहार करता है।

दूसरा स्कंध निर्वाण है। प्रत्येक व्यक्ति चित्त और शरीर से संयुक्त है। इसके सिवाय उसमें और कुछ नहीं है। शरीर (Material existance) कहलाता है। और चित्त के चार प्रकार हैं—वेदना (Feeling), संज्ञा (Conceptual Knowledge) संस्कार (Synthetic mental states) और विज्ञान (Consciousness) इन पाँचों को पंच-स्कंध कहते हैं। किसी भी व्यक्ति की स्थिति इन पाँच स्कंधों के समवाय (Synthesis) पर निर्भर है।

जब अर्हन्त (जीवन मुक्त) की प्रज्ञा द्वारा तृष्णा निरुद्ध हो जाती है तब चित्त-सन्तति का भी विरोध हो जाता है। चित्त सन्तति के निरुद्ध हो जाने से फिर व्यक्तिगत पंच-स्कंधों का उत्पन्न होना भी बंद हो जाता है। इसी का नाम स्कंध-निर्वाण है। इसके स्वरूप का वर्णन भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार किया है:—

"अत्थि भिक्खवे! तदायतनं, यत्थनेव पठवी न आपो न तेजो न वायो न आकासानञ्चायतनं न विञ्ञाणानञ्चायतनं न आकिञ्चाञ्ञयतनं न नेव सञ्ञा-नासञ्ञायतनं नायं लोको न परलोक उभो चन्दिमसूरिया,

तदाहं भिक्खवे ! नेव आगतिं वदामि न गतिं न ठितिं न चुतिं न उपपत्तिं, अप्पतिट्ठं अपावत्तं अनारम्मणमेव तं एसेवन्तो दुक्खस्सा'ति ॥ १ ॥

हे भिक्षुओ ! वह एक आयतन है, जहाँ न पृथ्वी है, न जल है, न तेज है, न वायु है, न आकाशानन्त्यायतन है, न विज्ञानान्त्यायतन है, न आकिञ्चन्यायतन है, न नैव संज्ञानासंज्ञायतन है। वहाँ न तो यह लोक है, न परलोक है, और न चाँद-सूरज हैं। भिक्षुओ ! न तो मैं उसे 'अगति' और न 'गति' कहता हूँ। न 'स्थिति' और 'च्युति' कहता हूँ, उसे उत्पत्ति भी नहीं कहता हूँ। वह न तो कहीं ठहरा है, न 'प्रवर्तित' होता है और न कोई उसका आधार है। यही दुःखों का अंत है।

"अत्थि भिक्खवे ! अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं, नो चे तं भिक्खवे ! अभविस्स अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं, नयिध जातस्स भूतस्स कतस्स सङ्खतस्स निस्सरणं पञ्ञायेथ। यस्मा च खो भिक्खवे ! अत्थि अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं, तस्मा जातस्स भूतस्स कतस्स सङ्खतस्स निस्सरणं पञ्ञायती'ति ॥ ३ ॥

भिक्षुओ ! (निर्वाण) अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत है। भिक्षुओ ! यदि वह अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत नहीं होता तो जात, भूत, कृत और संस्कृत का व्युपशम नहीं हो सकता। भिक्षुओ ! क्योंकि वह अजात, अभूत, अकृत और असंस्कृत है। इसीलिए जात, भूत, कृत और संस्कृत का व्युपशम जाना जाता है ॥ ३ ॥

"निस्सितस्स च चलितं, अनिस्सितस्स चलितं

न'त्थि, चलिते असति पस्सद्धि, पस्सद्धिया सति रति न होति, रतिया असति आगतिगति न होति, आगतगतिया असति चुतूपपातो न होति, चुतूपपाते असति नेवेध न हुरं न उभयमन्तरे, एसेव'न्तो दुक्खस्सा'ति ॥ ४ ॥

आत्म-भाव में पड़े हुए का ही चित्त चलता है और न पड़े हुए का नहीं चलता। चित्त न चलने से प्रश्रब्धि (=शान्तभाव) होती है। प्रश्रब्धि होने से राग उत्पन्न नहीं होता। राग नहीं होने से आवागमन नहीं होता। आवागमन नहीं होने से मृत्यु और जन्म भी नहीं होता। मृत्यु और जन्म न होने से, न यह लोक है न परलोक है और न उसके बीच में यही दुःखों का अन्त है ॥ ४ ॥

"दुद्दसं अनत्तं नाम, न हि सच्चं सुदस्सनं पटिविद्धा तण्हा जानतो, पस्सतो न'त्थि किञ्चनं'ति ॥२॥

—उदान ८ पाठलिगामिय वग्गो

अनात्म-भाव का समझना कठिन है। निर्वाण का समझना सहज नहीं है। ज्ञानी की तृष्णा जब नष्ट हो जाती है तब उसे रागादि क्लेश कुछ नहीं होते ॥ २ ॥

"अत्थि भिक्खवे! अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं ने चे तं भिक्खवे! अभविस्स अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं नयिध जातस्स भूतस्स कतस्स सङ्खतस्स निस्सरणं पञ्ञायेथा'ति,

जातं भूतं समुप्पन्नं कतं सङ्खतमद्धुवं ;
जरा मरण सङ्खतं रोगनीळ पभंगुणं ॥

आहार नेत्तिप्पभवं नालं तदभिनन्दितुं ।
तस्स निस्सरणं सन्तं अतक्कावचरं धुवं ॥
अजातं असमुप्पन्नं असोकं विरजं पदं ।
निरोधो दुक्खधम्मानं सङ्खारूपसमो सुखो' ति ॥

—इतिवुत्तकं, ४३ अजात-सुत्तं २-२-६

भिक्षुओ ! अजात, अभूत, अकृत और असंस्कृत (निर्वाण) है।

भिक्षुओ ! यदि वह अजात, अभूत, अकृत और असंस्कृत (निर्वाण) नहीं होता तो जात, भूत, कृत और संस्कृत से मुक्ति ही न सिद्ध होती।

जो पैदा हुआ (जातं-भूतं-समुप्पन्नं), बनाया गया (=कृतं) संस्कृत, अध्रुव, जरा-मरणशील, रोगों का घर, क्षण-भंगुर आहार पर स्थित है। उसका अभिनन्दन करना युक्त नहीं।

उससे मुक्ति, शान्त अतर्कावचर, ध्रुव, अजात, असमुत्पन्न, शोक-रहित और राग-रहित पद है, वही दुःख धर्मों का निरोध, संस्कारों का उपशमन सुख है।

खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं,
विरत्त चित्ता आयतिके भवस्मिं ।
ते खीण बीजा अविरुल्हिच्छन्दा ;
निब्बन्ति धीरा यथायम्पदीपो ॥

—रतन-सुत्तं

अर्हन्तों (जीवन-मुक्तों) के पुराने सब कर्म क्षीण हो जाते हैं और नये कर्मों की उत्पत्ति नहीं होती। पुनर्जन्म में उनकी आसक्ति नहीं होती और उनकी कोई इच्छा बाकी नहीं

रहती है। अतः वे सब धीरगण बुझे हुए प्रदीप की तरह निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

दीपो यथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काँचिद् विदिशं न कांचित्,
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥
एवं कृती निर्वृत्तिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्,
क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥
—सौन्दरानन्द

जिस प्रकार निर्वाण को प्राप्त हुआ दीपक न पृथ्वी को जाता है न आकाश को ही, न दिशाओं और विदिशाओं को ही। केवल स्नेह (तेल) के क्षय से शान्ति को प्राप्त होता है। उसी तरह अर्हन्त् निर्वाण को प्राप्त हुआ न पृथ्वी को जाता है न आकाश को, न दिशाओं-विदिशाओं को ही। केवल क्लेश के क्षय से शान्ति को प्राप्त होता है।

यद्यपि यह "निर्वाण" बुद्ध-धर्म का सर्वोच्च ध्येय है तथापि इसके साथ ही बुद्ध-धर्म की एक और भी देन है। वह सर्व प्राणियों का हित करना; जिसको बोधिसत्व व्रत कहते हैं जिसका फल बुद्ध होना है। बुद्ध की जातक-कथा में यह बात अच्छी तरह से दिखलाई गई है कि निर्वाण जाने की योग्यता प्राप्त करके भी बुद्ध ने निर्वाण में जाना पसन्द नहीं किया बल्कि साढ़े पांच सौ जन्मों तक मनुष्य जाति को उद्बोधन करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे तथा अपने शिष्यों को

भी यही उपदेश दिया कि हे भिक्षुओ ! तुम लोग सबके हित और सुख के लिए चारों तरफ जाओ, घूमो। स्वार्थ-रहित अपनी दया से प्रेरित होकर पूर्ण परिशुद्ध संयम-मय, करुणा-मय, मैत्री-मय और ज्ञान-मय जीवन का प्रचार करो। मनुष्य जाति के कल्याण के लिये बौद्ध-धर्म का यह उच्च आदर्श है।

निर्वाण तत्व के समझने के लिए प्रतीत्य-समुत्पाद नीति का समझना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रतीत्य समुत्पाद नीति

बुद्ध-धर्म में शाश्वतवाद या उच्छेदवाद नहीं है। शाश्वत-वाद का अर्थ है किसी नित्य-कूटस्थ आत्मा का विश्वास करना। उच्छेदवाद का तात्पर्य है शरीर के साथ आत्मा का भी विनाश मानना।

बुद्ध-धर्म के अनुसार इस जगत का व्यापार कार्य-कारण नियम के अनुसार चल रहा है। कोई भी घटना अपने पूर्व घटना के कारण से है और वह अपने पर-घटना का स्वयं भी कारण है। मनुष्य का व्यक्तित्व भी कार्य-कारण नियम के आधीन है। जिस कार्य-कारण-नियम के आधीन मनुष्य का व्यक्तित्व है उसे "प्रतीत्य-समुत्पाद" कहते हैं। प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ है—"इसके होने से यह होता है" जैसेः—

अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम-रूप के होने से छः आयतन, छः आयतनों के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, मरना, शोक, रोना-पीटना, शारीरिक दुःख, मानसिक चिन्ता तथा परेशानी होती है। इस

प्रकार इन सारे दुःख-स्कन्धों अर्थात् रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान की उत्पत्ति होती है।

(१) अविद्या (=चतुरार्य सत्य या प्रतीत्य समुत्पाद के अज्ञान) के होने से संस्कार उत्पन्न होता है। (२) संस्कार (=शुभाशुभ कर्मों का सूक्ष्म अंश) के होने से विज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् मृत्यु के बाद चित्त-सन्तति जन्मान्तर में आ जाती है। (३) विज्ञान के होने से नाम-रूप अर्थात् मानसिक और भौतिक अवस्था या जड़-चेतन की स्थिति का भेद होता है। (४) नाम-रूप के होने से षडायतन अर्थात् चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक् और मन ये छः इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं। (५) षडायतन के होने से स्पर्श अर्थात् रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म इन छः विषयों के साथ छहों इन्द्रियों का स्पर्श होता है। (६) स्पर्श के होने से वेदना अर्थात् सुख-दुःखादि वेदनायें उत्पन्न होती हैं। (७) वेदना के होने से तृष्णा उत्पन्न होती है। (८) तृष्णा के होने से उपादान अर्थात् विषयों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति या आसक्ति होती है। (९) उपादान के होने से भव अर्थात् विषयों की प्राप्ति के लिए जीवन का प्रगाढ़ प्रयत्न होता है। (१०) भव के होने से जाति अर्थात् व्यक्तित्व की सन्तति आगे को जन्मान्तर में चालू रहती है। (११) जाति के होने से जरा, मरण, शारीरिक दुःख, मानसिक दुःख इत्यादि दुःख-चक्र में पड़ा प्राणी असह्य दुःखों को सहता है।

प्रतीत्य समुत्पाद नीति "शाश्वतवाद" और "उच्छेदवाद" इन दोनों अन्तों का परित्याग करके मध्यपथ—"कार्य-कारण-वाद" या "सन्ततिवाद" का ही प्रदर्शन करता है। यही सन्ततिवाद बुद्ध का "अनात्मवाद" है। इस प्रतीत्य समुत्पाद

नीति के द्वारा हम लोग देखते हैं कि शाम की ज्वलित दीप-शिखा प्रातःकाल तक वही नहीं रहती और भिन्न भी नहीं रहती; अर्थात् शाश्वत भी नहीं है उच्छेद भी नहीं है। तब क्या है? सन्तति (=कार्य-कारण=हेतु-फल) का प्रवाह है—"न च सो, न च अञ्ञो।"

प्रतीत्य समुत्पाद नीति या निर्वाण के संबंध में महा पंडित राहुल सांकृत्यायनजी का कहना है कि—"बुद्ध ने प्रतीत्य-समुत्पाद के जिस महान् और व्यापक सिद्धान्त का आविष्कार किया था, उसके व्यक्त करने के लिये उस वक्त अभी भाषा भी तैयार नहीं हुई थी; इसलिए अपने विचारों को प्रकट करने के वास्ते जहाँ उन्हें प्रतीत्य समुत्पाद, सत्काय जैसे कितने ही नये शब्द गढ़ने पड़े; वहाँ कितने ही पुराने शब्दों को उन्होंने अपने नये अर्थों में प्रयुक्त किया। धर्म को उन्होंने अपने खास अर्थ में प्रयुक्त किया, जो कि आज के साइंस की भाषा में वस्तु की जगह प्रयुक्त होनेवाली घटना शब्द का पर्यायवाची है। ये धर्मा हेतु प्रभवः (=जो धर्म है वह हेतु से उत्पन्न हैं) यहाँ भी धर्म विच्छिन्न-प्रवाह वाले विश्व के कण-तरंग अवयव को बतलाता है।

"निर्वाण—निर्वाण का अर्थ है बुझना दीपक या आग का जलते-जलते बुझ जाना। प्रतीत्य समुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाह रूप से उत्पन्न) नाम-रूप (=विज्ञान=चित्त और भौतिक तत्व) तृष्णा के गारे से मिलकर जो एक जीवन-प्रवाह का रूप धारण कर प्रवाहित हो रहे हैं, इस प्रवाह का अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है। पुराने तेल-बत्ती या इंधन के जल चुकने तथा नये की आमदनी न होने से जैसे दीपक या अग्नि बुझ जाते हैं, उसी तरह आस्रवों=चित्तमलों (काम-भोगों और आत्मा के नित्यत्व आदि की दृष्टियों) के क्षीण होने पर यह

आवागमन नष्ट हो जाता है। निर्वाण बुझना है, यह उसका शब्दार्थ ही बतलाता है। बुद्ध ने अपने इस विशेष शब्द को इसी भाव के द्योतन के लिये चुना था। किन्तु साथ ही यह कहने से इन्कार कर दिया कि निर्वाणगत पुरुष (=तथागत) का मरने के बाद क्या होता है। अनात्मवादी दर्शन में उसका क्या हो सकता है, यह तो आसानी से समझा जा सकता है किन्तु वह ख्याल "बालानं त्रासजनकम्" (अज्ञों को भय-भीत करनेवाला) है। इसलिये बुद्ध ने उसे स्पष्ट नहीं कहना चाहा। उदान के इस वाक्य को लेकर कुछ लोग निर्वाण को एक भावात्मक ब्रह्मलोक जैसा बनाना चाहते हैं—

"हे भिक्षुओ ! निर्वाण अ-जात, अ-भूत, अ-कृत = अ-संस्कृत है।" किन्तु, इस निषेधात्मक विशेषण से किसी भावात्मक निर्वाण को सिद्ध तभी कर सकते थे, जब कि उसके 'आनन्द' का भोगने वाला कोई नित्य ध्रुव आत्मा होता। बुद्ध ने निर्वाण उस अवस्था को कहा है, जहाँ तृष्णा क्षीण हो गई, आस्रव = चित्तमल(= भोग और विशेष मतवाद की तृष्णाएँ) जहाँ नहीं रह जाते। इससे अधिक कहना बुद्ध के अ-व्याकृत प्रतिज्ञा की अवहेलना करनी होगी।"

यह राहुल जी का दृष्टिकोण है। मेरे विचार में तो बौद्ध तत्वज्ञान को समझने के लिये यह बात अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिये कि बुद्ध का अनात्मवाद, शाश्वतवाद के विरुद्ध तो है, परन्तु वह उच्छेदवाद भी नहीं है। बल्कि संततिवाद है। हम इसे त्रिपिटकाचार्य स्थविर जगदीश काश्यप जी एम. ए. के शब्दों में यों समझ सकते हैं :—

"शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि—मरनेके बाद कूटस्थ वही स्थिर आत्मा = जीव एक शरीर से निकलकर दूसरे में प्रवेश करता

है,ऐसी मिथ्या धारणा को शाश्वत दृष्टि कहते हैं। और मरने के बाद व्यक्तित्व का लोप हो जाता है, वह नहीं रहता, ऐसी मिथ्या धारणा को उच्छेद दृष्टि कहते हैं इन दोनों अन्तों को छोड़ बौद्ध दर्शन मध्य का मार्ग बताता है। वह यह कि, चित्त की संतति प्रतीत्य समुत्पन्न हो एक योनि से दूसरी योनि में प्रवाहित होती है। जिस प्रकार पहले पहर की प्रदीप-शिखा दूसरे पहर में बिल्कुल वही नहीं रहती है और न अत्यन्त भिन्न हो जाती है। उसी तरह जन्मने वाला न तो बिलकुल वही है और न भिन्न। किन्तु उसका तादात्मय संततिगत है।"

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि आत्मवाद के माने शाश्वतवाद और अनात्मवाद के माने उच्छेदवाद है। जैसा कि पाली निद्देश से भी प्रकट है:—

"अत्ताति सस्स दिट्ठि ।
निरत्ताति उच्छेद दिट्ठि ।"

बौद्ध-दार्शनिक लोग शाश्वतवाद-दर्शन से अपने दर्शन को पृथक करने के लिये ही अनात्मवाद का प्रयोग करते हैं। परन्तु अनात्मवाद से उनका अभिप्राय उच्छेदवाद से नहीं बल्कि सन्ततिवाद से है। इसका तात्पर्य यह है कि बौद्धों का अनात्मवाद शाश्वतवाद से भी भिन्न है और उच्छेदवाद से भी भिन्न है। तो है क्या ? सन्ततिवाद यही बौद्ध-दर्शन की अपनी विशेषता है और परमार्थ सत्य में तो न आत्मवाद है और न अनात्मवाद। जैसा कि भगवान् ने स्वयं कहा है—

उपायोहि धम्मेसु उपेति वादं,
अनूपयं केन कथं वदेय्य ।

अत्तं निरत्तं न हि तस्स अत्थि,
अधोसि सो दिट्ठिमिधेव सब्बा' ति ॥
(= दुट्ठकसुत्तं, सुत्तनिपात)

जिनमें किसी तरह की आसक्ति है वे ही तरह-तरह की धारणा वाले वादों में पड़ते हैं। और जिनमें किसी तरह की आसक्ति नहीं है, भला वे कैसे कोई वाद में पड़ सकते हैं? उनके लिये न तो आत्मवाद है और न अनात्मवाद। उन्होंने सभी मिथ्यादृष्टियों को यहीं नष्ट कर दिया है।

अज्झत्तमेव उपसमे,
नाञ्जतो भिक्खु सन्तिमेसेय्य ।
अज्झत्तं उपसन्तस्स,
नत्थि अत्तं कुतो निरत्तं वा ॥५॥
(= तुवट्ठकसुत्तं, सुत्तनिपात)

भिक्षु अपने भीतर ही शान्ति लाभ करे, किसी दूसरे से शान्ति पाने की आशा न करे। जिसने अपने भीतर ही शान्ति प्राप्त कर ली है, उसके लिये तो आत्मा ही नहीं तो फिर निरात्मा कहाँ से होगा?

इस जगह एक और बात पर प्रकाश डालना बहुत उचित मालूम देता है कि जन्मना जाति या वर्णव्यवस्था को मानने वाले लोग कहा करते हैं कि परमेश्वर के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं और पैर से शूद्र। इसलिये ब्राह्मण उत्तम हैं और शूद्र अधम। तथा वे यह भी कहते हैं कि पूर्व-जन्म के पुण्य के कारण ब्राह्मण कुल में जन्म होता है और पाप-कर्म के कारण शूद्र

और अछूत जाति में जन्म होता है। इस धारणा के विरुद्ध भारत के महान विचारक भगवान बुद्ध का कथन है कि—

"भिक्षुओ! जितनी महा नदियां हैं, जैसे गंगा, यमुना, अचिरवती (राप्ती), शरभू (सरयू, घाघरा) और मही (गंडक) वे सभी महासमुद्र को प्राप्त होकर अपने पहले नाम-गोत्र को छोड़ देती हैं और महासमुद्र के नाम से प्रसिद्ध होती हैं। ऐसे ही भिक्षुओ! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण तथागत के धर्म-विनय में प्रव्रजित हो पहले के नाम गोत्र को छोड़ते हैं, शाक्य पुत्रीय श्रमण के ही नाम से प्रसिद्ध होते हैं।"
(विनय-पिटक चुल्लवग्ग ४)

कह सकते हैं कि यह उपदेश सन्यासियों के सम्बन्ध में हैं, तो गृहस्थों के विषय में भी सुनिये—

एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन नामक विहार में विराजमान थे तो आश्वलायन नामक ब्राह्मण बहुत से ब्राह्मणों के साथ उपस्थित हुआ और उचित् स्थान पर बैठकर नम्रता पूर्वक भगवान् बुद्ध से कहने लगाः—

"हे गौतम! ब्राह्मण लोग ऐसे कहा करते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं दूसरे सब हीन वर्ण हैं; ब्राह्मण लोग ही शुक्ल वर्ण हैं और दूसरे सब लोग काले वर्ण हैं; ब्राह्मण लोग ही शुद्ध हैं और दूसरे लोग अशुद्ध हैं; ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, वह ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए हैं, वह ब्रह्मज हैं, उन्हें स्वयं ब्रह्मा जी ने निर्मित किया है। ब्राह्मण लोग ही ब्रह्मा के वारिस हैं। हे गौतम! इस विषय में आपका क्या मत है।"

भगवान् बोले—आश्वलायन? तुमने अवश्य देखा होगा कि ब्राह्मणों के घर ब्राह्मणी (उनकी स्त्रियाँ) ऋतुमती अर्थात् मासिक धर्म से होती हैं, गर्भ धारण करती हैं, प्रसव करती अर्थात् बच्चा जनती हैं और अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। तब

इस प्रकार स्त्री की योनि से उत्पन्न होते हुए भी ब्राह्मण लोग ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने इत्यादि अपने बड़प्पन और अहंकार की बातें क्यों करते हैं ?"

"क्या आश्वलायन ! तुमने सुना है कि यवन (यूनान) कंबोज (ईरान) में और दूसरे भी सीमान्त देशों में दो ही वर्ण होते हैं—आर्य और दास। आर्य से दास हो सकते हैं और दास से आर्य हो सकते हैं। (आर्यो हुत्वा दासो होति दासो हुत्वा आर्यो होती' ति)

"हाँ भगवान् ! मैंने सुना है।"

आश्वलायन ! तब ब्राह्मण लोग किस बल पर कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं दूसरे नहीं।"

(सुत्तन्त पिटक, मज्झिमनिकाय—अस्सलायन सुत्त)

बुद्ध के इस कथन से कोई ब्राह्मण या अब्राह्मण के घर जन्म लेने से ब्राह्मण या अब्राह्मण नहीं होता और अपनी अवस्था या परिस्थिति बदलने के विषय में भी बुद्ध की उपरोक्त उक्ति स्पष्ट है।"

मनुष्यों में ब्राह्मणादि जाति-भेद प्राकृतिक नहीं है। बल्कि काल्पनिक है। समाज में वंशपरम्परा से जन्मगत वर्ण या जाति मानना उचित नहीं है। इस विषय में बुद्ध का कथन है कि:—

"शरीरधारी जितने भी प्राणी हैं उनमें जाति को पृथक करने वाले लक्षण दीखते हैं; परन्तु मनष्य में जाति को पृथक करने वाले उस प्रकार के कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते, मनुष्यों में जो कुछ पृथकता है वह तुच्छ और काल्पनिक है ॥ १८ ॥"

"कारण, इस जगत में मनुष्यों में नाम और गोत्रादि कल्पित हैं, वे संज्ञामात्र हैं, भिन्न-भिन्न स्थानों में उनकी कल्पना हुई है। वे साधारण लोगों के मत से उत्पन्न हुए हैं ॥ ५५ ॥"

ज्ञान-हीन लोगों में इस प्रकार की मिथ्यादृष्टि बहुत काल से प्रचलित होती आई है। वे लोग कहा करते हैं कि ब्राह्मण जाति में जन्म लेने से ही ब्राह्मण होता है ॥ ५६ ॥

परन्तु जन्म के द्वारा न कोई ब्राह्मण होता है और न अब्राह्मण। कर्म के द्वारा ही ब्राह्मण होता है और कर्म के द्वारा ही अब्राह्मण ॥ ५७ ॥"

(सुत्तनिपात, वासेट्ठसुत्त)

"न जटा से, न गोत्र से और न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म है वही व्यक्ति पवित्र है और वही ब्राह्मण है। मैं ब्राह्मणी माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। जिसके पास कुछ नहीं है और जो कुछ नही चाहता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।" (धम्मपद ब्राह्मणवग्ग ११–१४)

"न तो कोई जन्म से वृषल (शूद्र या चांडाल) होता है और न ब्राह्मण, कर्म से ही वृषल होता है तथा कर्म से ही ब्राह्मण ॥ २८ ॥" (वसल सुत्त)

अंगुत्तर निकाय में भगवान् बुद्ध ने एक जगह कहा है:—

"यदि ऐसा माने कि जो कुछ सुख-दुःख या उपेक्षा की वेदना होती है सभी पूर्व कर्म के फलस्वरूप ही है, तो भिक्षुओ! जो प्राणातिपाति हैं, चोर हैं, व्यभिचारी हैं, झूठे हैं, चुगलखोर हैं, कठोर भाषी हैं, गप्पी हैं, लोभी हैं, द्वेषी हैं, मिथ्यादृष्टि वाले हैं वे वैसा पूर्वजन्म के फलस्वरूप ही होंगे, इसलिये भिक्षुओ! जो ऐसा मानते हैं कि सब कुछ पूर्व कर्म के फलस्वरूप होता है तो उनके मत से न तो अपनी इच्छा होनी चाहिये, न अपना प्रयत्न ही होना चाहिये। उसके लिये न तो किसी काम का करना होगा और न किसी काम से विरत रहना।"

In refuting the view that "Whatsoever weal or woe or neutral feeling is experienced, all that is due to some previous action" the Buddha says.

"So, then, owing to a previous action, men will become murderers, thieves, unchaste, liars, slanderers, abusive, babblers, covetous, malicious and perverse in view. Thus for those who fall back on the former deed as the essential reason there is neither desire to do, nor effort to do, nor necessity to do this deed or abstain from that deed."

Anguttara Nikaya
Vol. I Page 157

उपरोक्त बुद्ध वचनों से यह भलीभाँति स्पष्ट हो गया कि बुद्ध आर्य-अनार्य, ब्राह्मण-शूद्र आदि सामाजिक भेद या व्यवस्था जन्म से नही मानते थे और न उसे प्राकृतिक अटल नियम ही मानते थे तथा न उसे पूर्व जन्म के कर्मों का फल ही मानते थे। बुद्ध की शिक्षा का यही सार है कि मनुष्य अपने इसी जीवन में अपनी अवस्था या परिस्थिति बदल सकता है। जो बात व्यक्ति के लिये है वही समाज के लिये भी समझना चाहिये।

बुद्ध ने अपनी यह आवाज ढाई हजार वर्ष पहले उठाई थी। सुत्तपिटक के कई स्थानों पर इस ऊँच-नीच भाव का खंडन है। दीघ निकाय के अम्बट्ठ, अग्गञ्ञ और सोणदंड, मज्झिम

निकाय अस्सलायन और मधुर तथा खुद्दकनिकाय (सुत्तनिपात) के वासेट्ठसुत्त में इस पर बहुत कहा है। भारत की राष्ट्रीय शक्ति को निर्बल कर समय-समय पर उसे परतंत्र करने में यह ऊँच-नीच भावपूर्ण जातिभेद एक प्रधान कारण रहा है। बुद्ध ने इसके विरुद्ध उपदेश ही नहीं दिया बल्कि चांडाल तक के लिये उन्होंने अपने भिक्षु-संघ का सदस्य बनने का अधिकार दे दिया। इसके कारण यह भेद-भाव कम होने लगा। जिसके फल स्वरूप मौर्य भारतव्यापी साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हुए। मौर्य-वंश के बाद शुंगों के हाथों में राज्य-शासन आया। उन्होंने ब्राह्मणों की सलाह से उत्साहित हो फिर जाति-भेद के विष को बढ़ाना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि भारत न फिर से सागर, हिमालय और हिन्दू कुश तक की अपनी सीमा को अक्षुण्ण रख सका, और न विदेशी शत्रुओं शक, हूण, तुर्क आदि की अधीनता और अत्याचारों से अपने को बचा सका यह रोग २५०० वर्ष पहले जितना था उससे अब कई गुना अधिक बढ़ गया है। इसके हटाये बिना भारत का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। अतः बुद्ध की शिक्षा की जितनी आवश्यकता ढाई हजार वर्ष पहले थी, उससे कहीं अधिक इस समय उसकी आवश्यकता है।

त्रिरत्न वन्दना पूर्वक अब हम इस पुस्तक को समाप्त करते हैं:—

सर्वदृष्टि प्रहाणाय यः सद्धर्ममदेशयत्।
अनुकम्पामुपादाय तं नमस्सामि गौतमम्॥
अनित्यमखिलं दुःखमनात्मेति प्रवादिने।
नमो बुद्धाय धर्माय संघाय च नमोनमः॥

सब प्रकार की मिथ्या दृष्टियों (wrong views) को दूर करने के निमित्त जिन्होंने कृपा पूर्वक सद्धर्म की देशना की, उन गौतम बुद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ।

सभी संस्कारों को अनित्य, दुःख तथा अनात्म प्रदर्शित करने वाले बुद्ध को नमस्कार है और नमस्कार है धर्म तथा संघ को ॥

यो सन्निसिन्नो वर बोधि मूले,
मारं ससेनं महतिं विजेत्वा।
सम्बोधि मागञ्छि अनन्त ञाणो,
लोकोत्तमो तं पणमामि बुद्धं ॥
अट्ठङ्गिको अरिय पथो जनानं,
मोक्खप्पवेसा युजुको व मग्गो।
धम्मो अयं संति करो पणीतो,
नीय्याणिको तं पणमामि धम्मं ॥
सङ्घो विसुद्धो वर दक्खिनेय्यो,
सन्तिन्द्रियो सब्बमलप्पहीणो।
गुणेहि नेकेहि समिद्धिपत्तो,
अनासवो तं पणमामि सङ्घं ॥

जिन अनन्त ज्ञानी लोकोत्तम भगवान् बुद्ध ने श्रेष्ठ बोधि वृक्ष के नीचे विराजमान होकर महती सेना सहित मार (कामदेव) को परास्त करके सम्बोधि (सम्यक् ज्ञान) लाभ किया था, उन भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो धर्म श्रेष्ठ आठ अंगों से युक्त, सबके मोक्ष प्राप्त करने का सरल और सीधा मार्ग, परम शान्ति दायक, अतिश्रेष्ठ और निर्वाण में ले जानेवाला है। उस परम पवित्र धर्म को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो सङ्घ विशुद्ध और श्रेष्ठ दान का पात्र है, जिसकी इन्द्रियां शान्त हो गई हैं, जो सब प्रकार के मल, विक्षेप, आवरण से रहित तथा जो अनेक प्रकार के अनघ गुणों से विभूषित और आश्रव (तृष्णा) रहित है ; मैं उस सङ्घ को प्रणाम करता हूँ।

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु, मा कञ्चि दुक्खमागमा॥

सब प्राणी सुखी हों, सब कुशल क्षेम से रहें, सब कल्याण कर दृष्टि से देखें, किसी को कोई दुःख प्राप्त न हो।

गूढ़ार्थ-बोधिनी

अर्हत्—जीवन्मुक्त। अर्हत् पुरुष तीन प्रकार के होते हैं:—बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और श्रावक अर्हत्। इनमें जो पुरुष बिना किसी गुरू की सहायता के स्वयं अपने प्रतिभाबल से सर्वज्ञता या पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके निर्वाण लाभ करते हैं वे बुद्ध और प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं और जो पुरुष बुद्ध प्रदर्शित पथ पर चल कर सर्वज्ञता और निर्वाण लाभ करते हैं वे श्रावक अर्हत् कहलाते हैं। बुद्ध तथा प्रत्येक बुद्ध में यह अन्तर है कि कर्म ऋद्धि, ज्ञान-ऋद्धि आदि सब प्रकार की अलौकिक प्रतिभा तथा जिनमें असंख्य अप्रमेय प्राणियों के उद्बोधन करने की प्रतिभा होती है वे बुद्ध कहलाते हैं और जो अपने प्रतिभाबल से अन्य प्राणियों का उद्बोधन नहीं कर सकते केवल स्वयं निर्वाण लाभ कर सकते हैं वे प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं।

अग्रश्रावक—भगवान् बुद्ध के अग्रगामी शिष्य।

अनुशय—चित्त-मल, चित्त-दोष।

आश्रव—चित्त-मल (राग-द्वेष-मोह)।

आत्म या आत्मा—लौकिक अर्थ-'अहं' या 'अपनापन'—मैं और मेरे का भाव। पारमार्थिक अर्थ—नित्य शाश्वत वस्तु। बुद्ध की दृष्टि में 'अहं' अथवा 'अपनापन'—मैं और मेरे का भाव—व्यवहारिक मात्र है, पारमार्थिक सत्य नहीं है, और नित्य शाश्वत आत्मा को वे मानते नहीं थे।

आयतन—निवास, इन्द्रिय और विषय, बड़ा, विस्तार।

उपादान—संसार की ओर आसक्ति (भोग-ग्रहण की आसक्ति)

उपोसथ—व्रत, उपवास। बौद्ध सद्गृहस्थ लोग अमावस्या

और पूर्णिमा को अष्टशील का व्रत लेते हैं। इसीलिए अष्टशील का नाम उपोसथ शील भी है।

चक्रवाल – ब्रह्मांड का घेरा।

चैत्य—चौरा, समाधि-स्थान, देवस्थान।

त्रिविध प्रहाण–प्रहाण का अर्थ है नाश यह तीन प्रकार का है।

१—तदंग प्रहाण—सम्पूर्ण दुःख का नाश न होकर उसके किसी-किसी भाग या सीमा तक के नाश होने को कहते हैं। यह शील के द्वारा होता है।

२—विष्कम्भन प्रहाण– सम्पूर्ण दुःख का नाश तो होता है किन्तु उसके मूल का नाश नहीं होता। इससे दुःख फिर से उठ खड़ा होता है। यह समाधि के द्वारा प्राप्त होता है।

३—समुच्छेद प्रहाण—दुःख का अपने मूल सहित नाश हो जाना– दुःख का अत्यन्ताभाव। इसमें फिर दुःख का अभ्युत्थान कभी नहीं होता। यह प्रज्ञा के द्वारा होता है।

देवता और देवलोक– बौद्ध शास्त्रों में अनेक देवताओं और मार का वर्णन आता है। इस पिंड और ब्रह्मांड की रचना के भीतर गुप्त और प्रकट अनंत शक्तियाँ काम कर रही हैं। इन शक्तियों को ऋद्धि कहते हैं और इन ऋद्धियों के प्राप्त करने वालों को ऋद्धिमंत या देवता कहते हैं, इन ऋद्धियों में तारतम्य है और इनके भिन्न-भिन्न केन्द्र हैं। बौद्ध शास्त्रों में इस ब्रह्माण्ड की कुल रचनाओं को ३१ भुवनों, भूमियों या तीन लोकों में विभक्त किया गया है। विशेष-विशेष कर्म अर्थात् दान,शील और भावना के पुण्यानुष्ठान से मनुष्य उन भुवनों या लोकों को प्राप्त करता है।

इन ३१ भुवनों या लोकों में से मनुष्य और तिर्यक को छोड़ कर जितने सत्व या जीवगण हैं वे औपपत्तिक कहलाते हैं। औपपत्तिक सत्व उनको कहते हैं जो माता की कुक्षि से जन्म नहीं लेते, वरन् जिस आकृति और जिस अवस्था में उन्हें

आविर्भूत होना होता है, उसमें अंग प्रत्यंग सहित उतने ही बड़े आविर्भूत हो जाते हैं। विरुद्ध इसके मनुष्य और तिर्यक लोगों के सत्व माता की कुक्षि या अपने उपादानों से उत्पन्न होकर क्रमशः बड़े होते हैं।

आजकल अनेक देववाद के सिद्धान्त को भद्दा और एक ईश्वरवाद के सिद्धान्त को बहुत उत्तम समझा जाता है किन्तु विचार दृष्टि से देखने पर एक ईश्वरवाद की अपेक्षा अनेक देववाद अधिक समीचीन प्रतीत होता है। इस सम्पूर्ण विश्व की रचना में अनन्त शक्तियाँ हैं और उन शक्तियों के भिन्न-भिन्न केंद्र या लोक हैं।

मनुष्य अपने में देवत्व व ब्रह्मत्व का विकास करके देव लोकों और ब्रह्मलोकों को प्राप्त होता है और वहाँ के दिव्य भोगों को अमित काल तक भोगता है किन्तु इस प्रकार दिव्य भोगों और सुदीर्घ आयु प्राप्त करके भी जन्म-मरण के चक्र से नहीं छूटता। जन्म-मरण के चक्र से छूटने के लिए निर्वाण की आवश्यकता होती है। इसीलिए निर्वाण पद को सर्वोपरि अवस्था वर्णन किया गया है।

परलोक और अदृष्ट प्राणियों की सत्ता के अस्तित्व मानने में कुछ लोग आनाकानी करते हैं किन्तु हमारी इन्द्रियों के अतीत का संसार अत्यन्त विस्तृत है। जितना कुछ हमारे समक्ष गोचर हो रहा है, उसकी अपेक्षा समस्त सत्ता अनन्त और असीम है। उसको जानने के लिए हमको सम्यक् प्रज्ञा के विकास करने की बड़ी आवश्यकता है।

ऊपर जिन लोकों या भुवनों का वर्णन किया गया है उनको स्पष्ट रूप से समझने के लिए अगले पृष्ठ में एक नक़शा दिया गया है।

३१ भुवनों वा तीन लोकों का क्रम इस प्रकार है

४ अरूप ब्रह्मलोक या निराकार ब्रह्मलोक नैवसंज्ञानासंज्ञायतन लोक आकिंचन्यायतन लोक विज्ञानानन्त्यायतन लोक आकाशानन्त्यायतन लोक	४ अरूप ब्रह्म लोक के ध्यान की भूमियाँ
१६ रूप ब्रह्मलोक या साकार ब्रह्मलोक अकनिष्ठ लोक, सुदर्शिन लोक सुदर्शन लोक, अताप लोक अवृह लोक, असंज्ञासत्व लोक वृहत्फल लोक	रूप ब्रह्म लोक के चौथे ध्यान की भूमियाँ
शुभाकीर्ण लोक, अप्रमाणशुभ लोक, परीत्तशुभ लोक,	रूप ब्रह्मलोक के तीसरे ध्यान की भूमियाँ
आभास्वर लोक, अप्रमाणाभा लोक, परित्ताभा लोक,	रूप ब्रह्मलोक के दूसरे ध्यान की भूमियाँ
महाब्रह्म लोक, ब्रह्मपुरोहित लोक, ब्रह्मपार्षद्य लोक,	रूप ब्रह्मलोक के पहले ध्यान की भूमियाँ

<table>
<tr><td rowspan="5">७ काम सुगति लोक</td><td colspan="2">११ काम लोक</td><td></td></tr>
<tr><td>परनिर्मितवसवर्ति लोक</td><td>निर्माणरतिलोक</td><td rowspan="3">६ देव लोक वा स्वर्ग</td></tr>
<tr><td>तूपित लोक</td><td>याम लोक</td></tr>
<tr><td>त्रयतिंस लोक</td><td>चतुर्महाराजिक लोक</td></tr>
<tr><td colspan="2">मनुष्य लोक</td><td></td></tr>
<tr><td rowspan="4">४ काम दुर्गति लोक</td><td colspan="2">तिर्यक लोक</td><td rowspan="4">४ अपाय लोक</td></tr>
<tr><td colspan="2">असुर लोक</td></tr>
<tr><td colspan="2">प्रेत लोक</td></tr>
<tr><td colspan="2">नरक लोक</td></tr>
</table>

धातु—पदार्थ, तत्व।

निरोध—विनाश, मिटना, बंद होना।

निरोध-समापत्ति—चित्त की सर्वोपरि एकाग्रता जिसमें सब प्रकार के क्लेश और चित्तमल मिट जाते हैं।

पंच महादान या पंच महात्याग—सत्य और न्याय के लिए स्त्री, पुत्र, धन, धाम, और शरीर तक भी दे देना पड़े तो सहर्ष दे देना।

परित्राण—रक्षा।

पारमिता—पूर्णता। पारमिता १० हैं:—

दान पारमिता, शील पारमिता, निष्काम पारमिता, प्रज्ञा पारमिता, वीर्य पारमिता, क्षांति पारमिता, सत्य पारमिता, अधिष्ठान पारमिता, मैत्री पारमिता और उपेक्षा पारमिता।

(१) दान पारमिता—दान की पूर्णता। अर्थात् सत्य और न्याय के लिये सर्वस्व दे देना। आवश्यकता पड़े तो अपने जीवन तक को भी सहर्ष देना।

(२) शील पारमिता—शील की पूर्णता। अर्थात् मन,वचन और काय को पूर्णतया पाप कर्मों से परिशुद्ध रखना। सदाचार मार्ग से जरा भी न हटना।

(३) निष्काम पारमिता—भोग-इच्छाओं का परित्याग। परोपकार के लिये स्वार्थ त्याग की पूर्णता।

(४) प्रज्ञा पारमिता—ऊँच-नीच जहाँ से भी मिल सके ज्ञान का सम्पादन करना, जब तक की ज्ञान की पूर्णता प्राप्त न हो।

(५) वीर्य पारमिता–पराक्रम की पूर्णता। अविचल साहस। अंत तक उद्योग करना जब तक कि कार्य में सफलता न हो।

(६) क्षांति पारमिता—क्षमा, धैर्य और सहन-शीलता में परिपूर्णता लाभ करना।

(७) सत्य पारमिता—सत्य में पूर्णता लाभ करना। कभी भी मन वाणी और काया से सत्य से विचलित न होना।

(८) अधिष्ठान पारमिता—शिव-संकल्प की पूर्णता। अर्थात् अपने कल्याणकर सद्संकल्प में इतना दृढ़ हो कि कभी भी उससे विचलित न हो।

(९) मैत्री पारमिता—अतुल प्रेम। अर्थात् माता जैसे अपने एकलौते पुत्र को प्यार करती है, वैसे ही सब प्राणियों से अतुल प्रेम का बर्ताव करना।

(१०) उपेक्षा पारमिता—तटस्थता का भाव अर्थात् शत्रु-मित्र, सुख-दुःख आदि में सम-भाव।

इन दसों पारमिताओं को बिना पूर्ण किये कोई बुद्ध नहीं हो सकता।

पुद्गल—व्यक्ति।

बुद्ध-स्रावक-संघ—बुद्ध-शिष्य-गण—बुद्ध शिष्य गण मार्ग और फल भेद से ४ जोड़ियों या ८ व्यक्तियों में विभक्त किये गये हैं। जैसेः—(१) स्रोत आपत्ति मार्ग लाभी। (२) स्रोत आपत्ति फल लाभी। (३) सकृदागामी मार्ग लाभी (४) सकृदागामी फल लाभी। (५) अनागामी मार्ग लाभी। (६) अनागामी फल लाभी। (७) अर्हत् मार्ग लाभी। (८) अर्हत् फल लाभी। अर्थात् स्रोत आपत्ति जो निर्वाण की ओर जाने वाली उन्नति की धार में पड़ गया है। अब उसका पतन नहीं होगा। सात जन्म के भीतर वह अवश्य निर्वाण प्राप्त कर लेगा। सकृदागामी जिसका संसार में केवल एक दफ़े जन्म होगा, बाद निर्वाण को प्राप्त होगा। अनागामी जो इस मृत्यु लोक में जन्म नहीं ग्रहण करेगा। किन्तु अकनिष्ठ ब्रह्मलोक में उत्पन्न होकर वहां से ही अपने पुण्यों का फल भोगकर निर्वाण में चला जायगा।

अर्हत जो इसी जन्म में इसी शरीर से निर्वाण प्राप्त करते हैं। बौद्धधर्म में आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त लोगों के यह चार विभाग हैं।

बुद्ध के दस बलः—

१—बुद्ध स्थान को स्थान के तौर पर, और अस्थान को अस्थान के तौर पर यथार्थतः जानते हैं।

२—बुद्ध अतीत, वर्तमान और भविष्यत के किये कर्मों के विपाक को स्थान और हेतु पूर्वक ठीक से जानते हैं।

३—बुद्ध सर्वत्रगामिनी प्रतिपद (मार्ग, ज्ञान) को ठीक से जानते हैं।

४—बुद्ध अनेक धातु (ब्रह्माण्ड) और नाना लोकों को ठीक से जानते हैं।

५—बुद्ध नाना अभिमुक्ति (=स्वभाव) वाले सत्वों (= प्राणियों) को ठीक से जानते हैं।

६—बुद्ध दूसरे सत्वों की इंद्रियों के परत्व-अपरत्व (= प्रबलता, दुर्बलता) को ठीक से जानते हैं।

७—बुद्ध ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति के संक्लेश (=मल), व्यवदान (=निर्मल करण) और उत्थान को ठीक से जानते हैं।

८—बुद्ध अपने पूर्व जन्मों की बात को जानते हैं।

९—बुद्ध अपने विशुद्ध दिव्य-चक्षु से प्राणियों को उत्पन्न होते, मरते और स्वर्गादि लोकों को होते देखते हैं।

१०—बुद्ध आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा की विमुक्ति को साक्षात् कर लेते हैं।

बुद्ध के चार वैशारद्य—(=विशारदता) अर्थात् त्रुटि रहित अपूर्व चार पारदर्शिता—यथाः—

१—भगवान् बुद्ध सम्यक् सम्बुद्ध थे, वे अपने सम्यक ज्ञान के द्वारा यथा तथ्य सब पदार्थों को जानते थे यह उनका सम्यक् ज्ञान सम्बन्धी वैशारद्य है।

२—भगवान बुद्ध क्षीणास्रव अर्हत थे, उनमें किसी प्रकार का आस्रव अर्थात् चित्तमल या पाप नहीं था। वे निर्मल और पाप रहित थे। यह उनका सम्यक् चरित्र सम्बन्धी वैशारद्य है।

३—भगवान बुद्ध ने अन्तराय-धर्मों का अर्थात् उन्नति पथ के विघ्नकारी धर्मों का यथा तथ्य उपदेश भलीभांति दिया है, उस पर चलने से किसी की कभी गिरावट नहीं हो सकती। यह उनका सम्यक् दर्शन (= सिद्धान्त) सम्बन्धी वैशारद्य है।

४—भगवान् बुद्ध ने दुःख क्षय या निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बहुत निपुणता के साथ बताया है, उस पर चलने से दुःखों की अत्यन्त निवृति होती है। यह भी उनके सम्यक् दर्शन (= सिद्धान्त) सम्बन्धी वैशारद्य है।

बुद्ध के अठारह गुणः—

१—अतीत काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।
२—वर्तमान काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।
३—अनागत काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।
४—बुद्ध के सभी कायिक कर्म ज्ञान पूर्वक होते हैं।
५—बुद्ध के सभी वाचसिक कर्म ज्ञान पूर्वक होते हैं।
६—बुद्ध के सभी मानसिक कर्म ज्ञान पूर्वक होते हैं।
७—बुद्ध के सभी छन्द (इच्छा) की कभी हानि नहीं होती।
८—बुद्ध के धर्म-देशना करने में कभी कोई हानि नहीं होती।
९—बुद्ध के वीर्य (= उत्साह, पराक्रम) में कभी कोई हानि नहीं होती।
१०—बुद्ध के समाधि में कभी कोई हानि नहीं होती।

११—बुद्ध की प्रज्ञा में कभी कोई हानि नहीं होती ।
१२—बुद्ध की विमुक्ति में कभी कोई हानि नहीं होती ।
१३—बुद्ध 'दवा' अर्थात् हंसी-ठट्ठा नहीं करते ।
१४—बुद्ध में 'रवा' अर्थात् गिरावट नहीं होती ।
१५—बुद्ध का ज्ञान 'अस्फुट' अर्थात् अनस्पष्ट नहीं है ।
१६—बुद्ध में 'वेगादियितत्त' अर्थात् उतावलापन नहीं है ।
१७—बुद्ध 'अव्यावहमनो' अर्थात् उद्योग-रहित नहीं हैं ।
१८—बुद्ध में 'अप्पखानउपेक्खा' अर्थात् विचार-रहित उपेक्षा नहीं होती ।

बुद्ध महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों से युक्त होते हैं ।

यथाः—

१ - सुप्रतिष्ठित-पाद = जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो ।
२—नीचे पैर के तलवे में सर्वाकार-परिपूर्ण, नाभि-नेमि-युक्त (= पुट्ठी-युक्त) सहस्र अरोंवाला चक्र होता है ।
३—आयतपार्ष्णि = चौड़ी घुट्टी वाला ।
४—दीर्घ-अंगुल ।
५ – मृदु-तरुण-हस्त-पाद ।
६ – जाल- हस्त-पाद = अंगुलियाँ सटी हुई ।
७ – उस्संखपाद = गुल्फ जिस पाद में ऊपर अवस्थित हों ।
८—एड़ी-जंघ = मृग जैसा पेंडुलीवाला ।
९—बिना झुके, खड़े ही दोनों घुटनों को अपने हाथ के तलवों से छू जाता हो (आजानुबाहु) ।
१०—कोषाच्छादित पुरुष-इन्द्रिय ।
११—सुवर्ण-वर्ण = काँचन समान त्वचा ।
१२—सूक्ष्म-छवि = (अति सूक्ष्म ऊपरी चमड़ा) जिससे काया परमैल-धूल नहीं चिपटती ।

१३—एकैक लोम = एक-एक रोम कूप में एक-एक रोम हो।
१४—ऊर्ध्वाग्र लोम = प्रदक्षिणा (= बायें से दाहिनी ओर) से कुंडलित लोमों के सिरे ऊपर को उठे हों।
१५—ब्राह्म ऋजु-गात्र = लम्बे अकुटिल शरीर।
१६—सप्त-उत्सद = शरीर के सातों अंगों में पूर्ण आकार।
१७—सिंह-पूर्वार्द्ध-काय = जिसकी छाती आदि शरीर का ऊपरी भाग सिंह की भाँति विशाल हो।
१८—चितान्तरांस = जिसका दोनों कंधों का बिचला भाग चितपूर्ण हो।
१९—न्यग्रोध-परिमंडल = जितनी शरीर की ऊँचाई, उतना व्याम और जितना व्याम उतनी ही शरीर की ऊँचाई।
२०—समवर्त-स्कंध = समान परिमाण के कन्धों वाला।
२१—रसग्ग-सग्गी = सुन्दर शिराओं वाला।
२२—सिंह-हनु = सिंह समान पर्ण ठोड़ी वाला।
२३—चव्वालिस दन्त।
२४—सामदन्त।
२५—अ-विवर-दन्त = दाँतों के बीच कोई छेद न हो।
२६—सु-शुक्ल-दाढ़ = खूब शुभ्र दाढ़ वाला।
२७—प्रभूत-जिव्हा = लम्बी जीभ वाला।
२८—ब्रह्म-स्वर = करविंक पक्षी के-से स्वर वाला।
२९—अभिनील-नेत्र = अलसी के पुष्प जैसी नीली आँखों वाला।
३०—गो-पक्ष्म = गाय जैसी पलकवाला।
३१—भौंहों के बीच में श्वेत कोमल कपास-सी ऊर्णा (= रोम-राजी)।

३२—उष्णीषशीर्षा = पगड़ी की तरह उभड़ा हुआ सिर के ऊपर मांस पिंड।

बुद्ध की व्याम-प्रभा—व्याम-प्रभा—दोनों हाथों को दोनों तरफ फैलाने की दूरी को व्याम कहते हैं। एक व्याम के विस्तार में बुद्ध के चारों तरफ प्रकाश-मंडल-सा होता है; जिसे तेजो मंडल और ओरा भी कहते हैं।

बोधि पाक्षिक धर्म—३७ हैं, जिनके नाम ये हैं:—

चार स्मृत्युपस्थान, चार सम्यक प्रहाण, चार ऋद्धिपाद, पांच इन्द्रियाँ, पांच बल, सात संबोध्यंग और आठ आर्य-मार्ग, ये सब मिलकर सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्म हैं।

कायानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, वेदानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, चित्तानु-दर्शन स्मृत्युपस्थान और धर्मानुदर्शन स्मृत्युपस्थान, ये चार स्मृत्यु-पस्थान हैं।

अनुत्पन्न पुण्य कर्मो का उत्पन्न करना, उत्पन्न पुण्य कर्मो की वृद्धि करना, उत्पन्न हुए पाप कर्मो का नाश करना और अनुत्पन्न पाप कर्मो को न उत्पन्न होने देना ये चार प्रकार के सम्यक् प्रहाण हैं।

छन्द ऋद्धि (शुभेच्छा) का उत्पन्न करना, वीर्य ऋद्धि (शुभोत्साह) का उत्पन्न करना, चित्त ऋद्धि (प्रशान्त चित्त) का उत्पन्न करना और मीमांसा ऋद्धि (स्थिर संकल्प) का उत्पन्न करना, ये चार ऋद्धिपाद हैं।

श्रद्धा इन्द्रिय, वीर्य इन्द्रिय, स्मृति इन्द्रिय, समाधि इन्द्रिय और प्रज्ञा इन्द्रिय, ये पाँच प्रकार की इन्द्रियाँ हैं।

श्रद्धाबल, वीर्यबल, स्मृतिबल, समाधिबल और प्रज्ञाबल ये पाँच प्रकार के बल हैं।

स्मृतिसम्बोध्यंग, धर्म-विवेचन सम्बोध्यंग, वीर्य सम्बोध्यंग, प्रीति सम्बोध्यंग, प्रश्रब्धि (प्रशान्त) सम्बोध्यंग, समाधि सम्बोध्यंग और उपेक्षा सम्बोध्यंग, ये सात प्रकार के सम्बोध्यंग हैं।

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक्वाचा, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि ये आर्य अष्टांगिक मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ आठ अंगों वाले मार्ग हैं।

बोधिसत्व—बुद्ध होने के लिए या बुद्धत्व लाभ करने के लिए प्रयत्न शील।

जो लोग निर्वाण विद्या को सर्वसाधारण में वितरण करने के लिए करुणावश होकर बहुत जन्मों से परमपुनीत लोकोत्तरीय प्रतिभा और प्रज्ञा को प्राप्त करने के लिए साधना करते हैं उन्हें बोधि-सत्व कहते हैं।

भवाग्र से अवीचि तक—नैवसंज्ञानासंज्ञायतन लोक से अवीचि नरक तक। जितने भी प्राणी हैं वे सब सुखी हों, ऐसी बौद्धों की कामना है।

भिक्षु—बौद्ध-सन्यासी, साधु।

महाश्रावक—भगवान् बुद्ध के श्रेष्ठ शिष्य।

मिथ्या दृष्टि—अर्थात् सम्यक् दृष्टि से विपरीत। मिथ्या-धारणा।

दीर्घ निकाय के ब्रह्मजाल सुत्त में तथा पोट्ठवाद सुत्त में ६२ प्रकार की मिथ्या दृष्टियों का उल्लेख मिलता है परन्तु उनमें मुख्य ३ मिथ्या दृष्टियाँ हैं; जिनका (अंगुत्तर निकाय, तिक-निपात, महावग्ग में) भगवान् बुद्ध ने निम्नोक्त प्रकार से वर्णन किया है:—

भगवान् बुद्ध—भिक्षुओ! ये तीन 'तीर्थायतन' अर्थात् मिथ्या दृष्टि हैं जिन्हें मानने से परिणामतः मनुष्य अकर्मवादी बनता है। वे कौन से तीन हैं? (१) संसार में ऐसे भी श्रमण ब्राह्मण होते हैं जिनका ऐसा वाद और ऐसी दृष्टि होती है कि

मनुष्य सुख-दुःख या इनसे भिन्न जो कुछ भी अनुभव करता है उन सबका कारण पूर्वकृत कर्म है। (२) बहुत से ऐसे श्रमण ब्राह्मण भी होते हैं कि जिनका वाद और दृष्टि ऐसी होती है कि मनुष्य जो कुछ सुख-दुःख या इनसे भिन्न अनुभव करता है उन सबका कारण ईश्वर है। (३) बहुत से ऐसे श्रमण-ब्राह्मण भी होते हैं जिनका वाद और दृष्टि ऐसी होती है कि मनुष्य जो कुछ सुख दुःख आदि का अनुभव करता है उन सबका कोई कारण नहीं अर्थात् वे अहेतु अप्रत्यय हैं।

भिक्षुओ! पूर्वकृत हेतुवादियों से मैं ऐसा प्रश्न करता हूँ। क्या आप लोग ऐसा वाद और ऐसी दृष्टि रखते हैं कि मनुष्य को सुख दुःखादि सब कुछ पूर्वकृत कर्म से ही होते हैं ? जब वे कहते हैं—"हाँ।" तब हम उनसे पूछते हैं कि यदि मनुष्य के सुख-दुःखादि जितने भी अनुभव हैं वे सब पूर्वकृत कर्म के कारण हैं तो इस जन्म में प्राणी-हिंसा, चोरी, व्यभिचार-मद्यपान-जुआ खेलना, झूठ बोलना, चुगली करना, कड़वी बात बोलना, अनर्थ बात बोलना, लोभ करना, क्रोध करना, नास्तिकता इत्यादि जितने भी गुरुतर पाप कर्म हैं, वे सब पर्वकृत कर्म के कारण ही होंगे। तब इन सब पाप कर्मों का जिम्मेदार मनुष्य को न होना चाहिये।

भिक्षुओ! पूर्वकृत कर्म को ही सर्वस्व कारण मानने वालों के लिये कुछ कर्म करने की इच्छा नहीं हो सकती और न कुछ प्रयत्न और परिश्रम करने की आवश्यकता हो सकती है। कर्तव्य और अकर्तव्य कर्म का भी कुछ निश्चय नहीं हो सकता। इस प्रकार किसी निश्चित कर्म पथ के अभाव के कारण वे हत-स्मृति वाले होंगे। इन अनाथों का कोई सहधार्मिक श्रमणवाद (धर्मानुकूल बौद्ध सिद्धान्त) नहीं हो सकता। भिक्षुओ! इन पर्वकृत

हेतुवालों के लिये यह हमारा सहधार्मिक निग्रह (धर्मानुकूल उनके मत का खंडन) है।

भिक्षुओ ! ईश्वर निर्माणवादियों से भी हम यही पूछते हैं कि मनुष्य के सुख-दुःखादि जितने भी अनुभव हैं वे सब ईश्वर-कृत हैं तो प्राणि-हिंसा, चोरी, व्यभिचार-मद्यपान-जुआ खेलना, झूठ बोलना, चुगली करना, कड़वी बात बोलना, अनर्थ बात बोलना, लोभ करना, क्रोध करना, नास्तिकता इत्यादि जितने भी गुरुतर पाप कर्म हैं वे सब ईश्वर कृत ही होंगे। तब इन सब पाप कर्मों का जिम्मेदार मनुष्य को न होना चाहिये। भिक्षुओ ! सुख-दुःखादि सम्पूर्ण पदार्थों का ईश्वर निर्माणवाद का अनुगमन करनेवालों को कुछ कर्म करने की इच्छा नहीं हो सकती और न कुछ प्रयत्न और परिश्रम ही करने की आवश्यकता हो सकती है। कर्तव्य और अकर्तव्य कर्म का कुछ निश्चय भी नहीं हो सकता। इस प्रकार किसी निश्चित कर्म पथ के अभाव के कारण हत-स्मृति वाले होंगे। इन अनाथों का कोई सहधार्मिक श्रमणवाद (धर्मानुकूल बौद्ध सिद्धान्त) नहीं हो सकता। भिक्षुओ ! इन ईश्वर-कृत हेतु वालों के लिये यह हमारा सहधार्मिक निग्रह (धर्मानुकूल उनके मत का खंडन) है।

भिक्षुओ ! मनुष्यों के यावत् सुख-दुःखादि अनुभवों का कोई कारण न माननेवाले अहेतु अप्रत्यय वादियों से हम ऐसा पूछते हैं कि इस संसार में प्राणि-हिंसा, चोरी, व्यभिचार-मद्यपान,-जुआ खेलना, झूठ बोलना, चुगली करना, कड़वी बात बोलना, अनर्थ बात बोलना, लोभ करना, क्रोध करना, नास्तिकता इत्यादि जितने भी गुरुतर पाप कर्म हैं वे सब बिना कारण ही होते हैं उनका कोई पूर्व हेतु नहीं है।

भिक्षुओ ! अहेतुवाद को अनुगमन करने वालों को कर्म

करने की तथा व्यायाम करने की कोई इच्छा और आवश्यकता नहीं हो सकती। कर्तव्य और अकर्तव्य का कोई निश्चय भी नहीं हो सकता। ऐसे अनाथों का कोई सहधार्मिक श्रमणवाद (धर्मानुकूल बौद्ध सिद्धान्त) नहीं हो सकता । भिक्षुओ इन अहेतुवादियों के लिये यह हमारा तीसरा सहधार्मिक निग्रह (धर्मानुकूल उनके मत का खडन) है।

विकाल भोजन—मध्याह्नोत्तर का भोजन विकाल भोजन कहलाता है।

विचिकित्सा—बुद्ध,धर्म, संघ इन तीनों के महत्व में सन्देह करना ।

विनिपातिक—पाप योनि या नारकीय जीव ।

विहार—बौद्ध भिक्षुओं के रहने का स्थान (मठ),बुद्ध-मंदिर ।

व्युपशम--विनाश, निरोध ।

शीलव्रत--बुद्ध के बताए हुए आर्य - अष्टाँगिक - मार्ग के अतिरिक्त अन्य यज्ञ-याग पूजा-पाठ, व्रत-उपवास और कठिन तप आदिकों के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति में विश्वास करना।

सत्काय-दृष्टि--इस नाम रूपात्मक पंच-स्कंध या जगत को सत्य और स्थायी समझना अथवा इससे भिन्न किसी शाश्वत या नित्य वस्तु का विश्वास करना।

सम्यक-दृष्टि—दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध और दुःख-निरोध का मार्ग। इन चारों आर्य सत्यों के साक्षात्कार को सम्यक दृष्टि कहते हैं।

स्थविर--भिक्षु होने के १० साल बाद स्थविर और २० साल बाद महास्थविर होता है। इसी का पाली रूप थेरो और महाथेरो है।

शुद्धि-पत्र

कृपया इस शुद्धि-पत्र के अनुसार पुस्तक को शुद्ध करके पढ़ियेगा

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
भावित्तानं	भावितत्तानं	१३	१८
प्राप्ति लिए	प्राप्ति के लिए	२९	२६
बीज	बीच	३०	५
उपासथ	उपोसथ	११	१४
सुर मेरय	सुरा मेरय	१३	४
तसरणेन	तिसरणेन	,,	१२
आर, ओर	और	१५,७३	५,३
आचाय	आचार्य	१८	१४
युक्त	मुक्त	१९	१२
परियत्तं	परियंतं	२१	६
द्वारा	द्वारा	,,	७
श्रेष्ट	श्रेष्ठ	२५	५
पदुभुत्तरं	पदुमुत्तरं	,,	१६
तिस्न	तिस्स	,,	१९
यो च मनापो	यो चा मनापो	३३	२२
पूव	पूर्व	३५	१
बाला	वाला	४०	२०
चिंतियसु	चिंतयिंसु	४३	८
वचना	बचना	४६	६
उपसंकामित्वा	उपसंकमित्वा	४७	१९
जा पुरुष	जो पुरुप	५०	४
पंचम हारिब्बागे	पंचमहापरिब्बागे	५२	६
यहीं	यही	५८	,,

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
नायक	नामक	६१	१५
सौभ्य	सौम्य	६६	७
जा बल	जो बल	७२	१४
वस्त्र	वस्त्र	७४,७५	१२,९
मोचनात्थाय	मोचनत्थाय	,,	१७
वट्ठं	वुड्ढि	,, ,७८	२१,१२
सहलोके	सहालोके	७६	११
सम्पतियों	सम्पत्तियों	८१	१४
रमरण	स्मरण	९६	२२
अकेलौ	अकेले	१०७	५
सेय्यसों	सेय्यसो'	,,	१२
दानों	दोनों	११७	६
च्चा	सच्चा	१२०	२१
निर्वण	निर्वाण	१२४	१३
सक्षात	साक्षात	,,	१८
विरक्ति—	विरक्ति हो	,,	२४
लप्पति ब्रमि	लिप्पति ब्रूमि	१२८	२१
विनश्यमान हें	विनश्यमान हैं	१३६	५
दु,ख	दुःख	१३८	२४
विरोध	निरोध	१३९	१७
अतकीवचर	अतर्कावचर	१४२	१४
वाकी	बाकी	,,	२३
निर्वाण—	निर्वाण में	१४३	२१
सामदन्त	समदन्त	१६७	१६

* बुद्धं शरणं *

निवेदन

जिनके हृदय में मनुष्यता का आदर है और जो प्राणी मात्र के हित के लिए मनुष्य जाति की भलाई करना चाहते हैं, तथा मनुष्य जाति की भलाई के लिए अपने देश, समाज और अपनी भलाई करना उचित समझते हैं, ऐसी विशाल दृष्टि और उदार हृदय वाले महानुभावों से मेरा निवेदन है।

सन् १८७४ ई० में मेरा जन्म हुआ और बचपन में ही मेरे माता पिता का देहान्त हो गया। मैं स्वभाव से ही सत्य का खोजी होने के कारण विद्वानों और साधु-महात्माओं की सेवा और सत्संग में रहता था। मैंने हिन्दू-शास्त्रों और हिन्दू-संस्कृति का बड़ी गवेषणा के साथ अध्ययन किया, किन्तु मुझे शान्ति न मिली। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दू धर्म में एक अति भीषण जन्मगत वर्ण-व्यवस्था है जिसके कारण शूद्रों तथा अछूतों की अवस्था बड़ी दयनीय है। उन्हें धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शिक्षा-सम्बंधी जीवन के उन्नति-विकास के सभी क्षेत्रों में नीचे गिराया गया है—

उनके जन्म सिद्ध मानवीय अधिकारों और उच्चाकांक्षाओं को बड़े कौशल और निर्दयता के साथ कुचला गया है। उच्च जाति के हिन्दू लोग वंशानुक्रम से हज़ारों वर्षों से जन्मगत वर्ण-व्यवस्था द्वारा उनके श्रम से अनुचित लाभ उठा रहे हैं। इसे देखकर मेरा हृदय अत्यन्त दुखित और द्रवित हो गया।

सन् १८९६ ई० में जब मैं दुर्भिक्ष-पीड़ितों में सेवा का काम कर रहा था, उसी समय सौभाग्य-वश, काशी में, लंका के बौद्ध भिक्षुओं से मेरी भेंट हो गई। उनके सत्संग से मैंने बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। मुझे ज्ञात हुआ कि वर्तमान हिन्दुओं में जितनी सार्वजनिक लोक-हितकारी तत्वों का समावेश है, उन सबका मूल स्रोत बौद्ध-धर्म है। बौद्धधर्म भारत वर्ष का मौलिक और सनातन धर्म है, एवं हिन्दुओं को सामाजिक विषमता व बुराइयों से मुक्त करके उन्हें एक सुसंगठित व समुन्नत राष्ट्र बना देने की शक्ति उसमें मौजूद है। अतः मैंने निश्चय किया कि हिन्दुओं में परम कारुणिक भगवान् बुद्ध की कल्याण कारिणी शिक्षा का प्रचार करना चाहिये, तब से मैं अपने निश्चय के अनुसार निरन्तर बौद्ध धर्म का प्रचार करता रहा, और सन् १९१४ ई० में भदन्त कृपाशरण महास्थविर तथा गुणालंकार महास्थविर द्वारा विधिवत बौद्ध-भिक्षु दीक्षा ग्रहण करके बौद्ध भिक्षुओं में सम्मिलित हुआ। तदोपरान्त मैंने सन् १९१६ ई० में अपने चिर चिन्तित पुनीत उद्देश्य की सिद्धि के लिए—

भारतीय बौद्ध समिति—INDIAN BUDDHIST SOCIETY की स्थापना की, जिसका उद्देश्य और कार्य प्रणाली निम्नलिखित है:—

उद्देश्य

मनुष्य जाति में भगवान् बुद्ध प्रदर्शित उस लोकोत्तर धर्म का पूर्ण रूप से प्रसार करना है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन में करुणा, मैत्री, समता, संयम, सेवा, सहानुभूति आदि पवित्र भावों का विकास करें तथा अपने सब प्रकार के दोषों और दुःखों का अत्यन्त निरोध करके इस व्यक्तिगत जीवन के बाद निर्वाण अर्थात् एक अचिन्त्य, सर्वोपरि, नित्य और पूर्ण शान्ति को लाभ करें।

कार्य-प्रणाली

१—सब प्राणियों के सुख-दुःखों को अपने सुख-दुःखों के समान समझना।

२—जाति-भेद के ऊँच-नीच भावों को दूर करके मनुष्य मात्र में समानता और सहयोग का प्रचार करना तथा [illegible] मानवीय उन्नति-विकास और अधिकार की भावनाओं को जागृत करना।

३—(क) बौद्ध-धर्म के विभिन्न दर्शन तथा सिद्धान्तों का समन्वय पूर्वक अनुशीलन करना।

(ख) अ-बौद्ध-धर्म-दर्शन तथा वर्तमान विज्ञान के साथ बौद्ध धर्म का तुलनात्मक अध्ययन करके उसकी विशेषताओं को प्रकाश में लाना।

४ - पाली, संस्कृत आदि प्राचीन ग्रंथों का तथा आधुनिक खोजपूर्ण रचनाओं का अनुवाद तथा प्रकाशन करना।

५—भारतीय बौद्ध समाज को संगठित करना तथा बौद्ध संस्कृति और हितों की रक्षा करना।

विहार और पुस्तकालय—इस कार्य के संचालन के लिए मैंने अपने मित्रों और शिष्यों की सहायता से रिसालदार पार्क में एक बुद्ध-विहार का निर्माण करा कर सन् १९२५ ई० में तदनुसार बुद्धाब्द २४६९ में उसका उद्घाटन किया। इस विहार में भगवान् बुद्ध की प्रतिमा की विधिवत प्रतिष्ठा की गई। इसमें योग्य बौद्ध-साधु रहेंगे, भगवान बुद्ध का पूजन वंदन करेंगे तथा अध्ययन-अध्यापन और धर्म-प्रचार करेंगे।

इस विहार में मैंने एक बौद्ध धर्मानुसंधान पुस्तकालय भी स्थापित किया है, जिसमें अब तक विभिन्न धर्मों और दर्शनों की लगभग पाँच हजार पुस्तकें—पाली, प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी आदि भाषाओं में संगृहीत हो चुकी हैं। पुस्तकालय स्थापित करने का उद्देश्य है—बौद्ध, जैन एवं वैदिक हिन्दू शास्त्रों, पारसियों के धर्म-ग्रंथों तथा फाहियान, ह्वानसांग आदि विदेशीय

यात्रियों के भ्रमण-वृत्तान्तों और पुरातत्व विभाग के वैज्ञानिक अनुसंधानों का पक्षपात-रहित तुलनात्मक अध्ययन करके प्राग-वैदिक, वैदिक और वैदिक इतर भारतीय सभ्यता के ऐतिहासिक तथ्यों को खोजकर प्रकाश में लाना जिससे कि भविष्य में विधान बनाने और इतिहास लिखने में पक्षपात न हो।

न्याय-निष्ठ, उदार-हृदय, महानुभावों से कहना न होगा कि जिन भगवान् बुद्ध के ज्ञानालोक से समस्त विश्व समालोकित है, जिनके आविर्भाव के कारण चीन, जापान, तिब्बत, नैपाल, बर्मा, स्याम, हिन्द-चीन, सिलोन आदि देशों के निवासी भारत-वर्ष को परम पुनीत बौद्ध-तीर्थ मानकर श्रद्धा की दृष्टि से देखते और प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में आकर उसका दर्शन करते हैं, उन भगवान् तथागत सम्यक् सम्बुद्ध के प्रचारित लोकोत्तर धर्म को उन्हीं की लीला-भूमि में प्रचार करने के लिए अपने तन, मन, धन से यथाशक्ति सहायता करके महन् पुण्य और यश के भागी बने। समस्त सभ्य संसार उस महाप्रभु का चिरऋणी है और उस ऋण का परिशोध करना सबका परमावश्यक कर्तव्य है, इस बात को हृदय और बुद्धि रखनेवाले सज्जन महानुभाव स्वतः समझ सकते हैं। किम्मधिकम्!

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्तिः परेषां परपीड्यनाय।
खलस्य साधोर्विपरीत मेतत्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

दुष्ट पुरुषों की विद्या झगड़ने के लिए, धन घमंड के लिए

और बल दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के लिए होता है। किन्तु विप-रीत इसके, सज्जन पुरुषों की विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और बल दूसरों की रक्षा के लिए होता है।

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु, मा कञ्चिदुक्खमागमा॥

सब प्राणी सुखी हों, सब कुशल-क्षेम से रहें; सब कल्याण-कर दृष्टि से देखें, किसी को कोई दुःख प्राप्त न हो।

भदन्त बोधानन्द महास्थविर
बुद्ध-विहार
रिसालदार पार्क,
लखनऊ।